वाल्मीकि-रामायणे

सुन्दरकाण्डम्

(१५-२५ सर्गात्मकम्)

(मूलान्वयानुवादटिप्पण्यादिभिः समन्वितम्)

डॉ० जियालाल काम्बोज
प्राध्यापक, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ईस्टर्न बुक लिंकर्स
दिल्ली-७
मूल्य : १२.००

डा. उषा सत्यव्रत जी को,
सादर भेंट

[illegible]
18/9/81

वाल्मीकि-रामायणे

सुन्दरकाण्डम्

(१५-२५ सर्गात्मकम्)

(मूलान्वयानुवादटिप्पण्यादिभिः समन्वितम्)

डॉ० जियालाल काम्बोज
प्राध्यापक, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ईस्टर्न बुक लिंकर्स
दिल्ली-७

५८२५, न्यू चन्द्रावल रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण : १९८१

मुद्रक :
अमर प्रिंटिंग प्रेस (श्याम प्रिंटिंग एजेन्सी),
८/२५ विजय नगर, दिल्ली—११०००७

दो शब्द

रसपरिपाक, अलङ्कारयोजना, प्रकृतिवर्णन, चरित्रचित्रण आदि सभी दृष्टियों से सुन्दरकाण्ड समस्त वाल्मीकीय रामायण में उत्तम है। धार्मिक दृष्टिकोण से भी इस काण्ड का विशेष महत्त्व है। इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए दिल्ली-विश्वविद्यालय द्वारा बी० ए० ऑनर्स (संस्कृत) के नवीन पाठ्यक्रम में इस काण्ड में से सर्ग १५ से २५ तक का अंश निर्धारित किया गया है। वैसे तो सुन्दरकाण्ड के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं, परन्तु हिन्दी में कोई ऐसा संस्करण प्राप्य नहीं था जो विश्व-विद्यालय-सत्र के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। अतः मूल के साथ अन्वय, अनुवाद और टिप्पणियों सहित यह छात्रोपयोगी संस्करण तय्यार किया गया है। विषय-प्रवेश के लिये आरम्भ में विस्तृत भूमिका दी गई है। **रामायण-तिलक, रामायण-शिरोमणि और गोविन्दराजीय रामायणभूषण** टीकाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ग्रन्थ को अधिक प्रामाणिक और रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

इस संस्करण को तय्यार करने में मुझे अनेक विद्वानों के ग्रन्थों से सहायता लेनी पड़ी। मैं उन सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मेरे मित्र एवं सहयोगी डॉ० राजेन्द्रनाथ शर्मा ने अनेक सुझाव देकर इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने में मेरी सहायता की है। मैं उनका भी हृदय से आभारी हूँ।

यदि यह स्वल्पकाय ग्रन्थ छात्र-छात्राओं तथा सामान्य पाठकों की आवश्यकताओं को पूरा करने में उपयोगी सिद्ध हो सका तो लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा।

विदुषां विधेयः
जियालाल काम्बोज
इ-४६, गुरुनानक मार्ग,
आदर्श नगर, दिल्ली-३३

कृष्णजन्माष्टमी
सं० २०३८ वि०
(२३.८.१९८१)

विषयानुक्रम

भूमिका

आदिकवि वाल्मीकि : जीवनवृत्त—

वाल्मीकि के जीवनवृत्त की किसी भी प्रामाणिक स्रोत से जानकारी उपलब्ध नहीं है। कवि ने अपनी कृति में अपने माता-पिता, कुल, जन्म, जीवनवृत्त आदि पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। महाकाव्य के प्रारम्भ में क्रौञ्चवध और शोक से श्लोकोत्पत्ति की जो कथा दी गई है वह भी बालकाण्ड के प्रक्षिप्त कहे जाने वाले अंश में आने के कारण विश्वसनीय नहीं। उत्तरकाण्ड में, सीता का वाल्मीकि के आश्रम में निवास, लव-कुश का जन्म, लवकुश द्वारा रामायण का गान आदि कथानक की प्रामाणिकता में भी अनेक विद्वानों को सन्देह है। तो भी रामायण और अनुश्रुतियों से जो कुछ उपलब्ध है उसे नीचे दिया जाता है :—

एक अनुश्रुति के अनुसार वाल्मीकि का जन्म नाम रत्नाकर था। वह नीच कुल में उत्पन्न हुआ था और दस्युकार्य करता था। एक दिन उसने साधुओं को रोक लिया और उन्हें सब कुछ रख देने के लिये कहा। साधुओं ने कहा कि जिनकी आजीविका के लिये तुम यह दुष्कर्म कर रहे हो क्या वे कुटुम्बजन इसके फल में भी भागीदार होंगे। वाल्मीकि जब साधुओं को वृक्ष से बांधकर अपनी पत्नी और पुत्रों से पूछने गया तो उन्होंने कहा कि 'जो करता है वही भरता है, इन कुकर्मों का फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा'। वाल्मीकि की आंखें खुल गईं। वह वापस आकर साधुओं से अपने कल्याण का उपाय पूछने लगा। साधुओं ने कहा—'राम नाम का जप करो'। वाल्मीकि ने कहा कि मैं तो इतना पापी हूँ कि इस नाम का उच्चारण भी नहीं कर सकता। तब साधुओं ने कहा कि राम नाम का उलट 'मरा मरा' जपो, समय आने पर स्वयं 'राम राम' का उच्चारण होने लगेगा। वाल्मीकि ने वैसे ही किया और वह राम का बहुत बड़ा भक्त हुआ। समय आने पर राम-कृपा से उसने रामायण की रचना की। स्कन्द-पुराण में वाल्मीकि के मुख से कहलवाया गया है कि उसने अपना प्रारम्भिक जीवन (बाल्यकाल और युवावस्था) वनेचर किरातों के बीच बिताया, जिसके कारण वह आर्य जीवन-पद्धति, सभ्यता और संस्कृति से हीन हो गया। अतः उसे पुनः ब्राह्मण जीवन-पद्धति में दीक्षित किया गया। यह घटना उपर्युक्त कथा पर आधारित अर्वाचीन प्रक्षेप प्रतीत होती है।

बालकाण्ड के प्रारम्भिक सर्गों से भी वाल्मीकि के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। प्रथम सर्ग में वाल्मीकि नारद से पूछता है कि इस लोक में कौन सर्वगुण-

सम्पन्न और श्रेष्ठ नर है। नारद उसके उत्तर में इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न दशरथ-सुत राम के जन्म से लेकर राज्यप्राप्ति पर्यन्त समस्त जीवनवृत्त का संक्षेप में वर्णन करता है। दूसरे सर्ग में कहा गया है कि नारद के चले जाने पर वाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाज के साथ तमसा नदी के तट पर स्नान के लिये गए। जब वे वहाँ घूम रहे थे तो उन्होंने एक क्रौञ्च दम्पती को विहार करते देखा। तभी वहाँ एक व्याध आया और उसने नरक्रौञ्च को तीर से बींधकर धराशायी कर दिया। खून से लथपथ और धरती पर छटपटाते हुए क्रौञ्च को देखकर क्रौञ्ची करुणापूर्वक विलाप करने लगी। क्रौञ्ची के विलाप से और धराशायी, तड़पते हुए उस क्रौंच पक्षी को देखकर वाल्मीकि के हृदय में करुणा-भाव उत्पन्न हुआ और उसके द्रवित हृदय से अनायास ये वचन निकल पड़े—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ 'हे निषाद, तुझे कभी भी प्रतिष्ठा प्राप्त न हो। तू ने क्रौञ्चयुगल में से कामपीडित एक पक्षी को मार दिया है।' ऐसा कहते ही उसके मन में विचार हुआ कि ये किस प्रकार के अनोखे वचन मेरे मुख से निकल पड़े हैं। उसने बार बार उन शब्दों को दोहराया और अपने शिष्य भरद्वाज को भी सुनाया और कहा—जो कुछ मुझ शोकार्त के मुख से निकला है वह पादबद्ध है, अक्षरों की समान गणना वाला है तथा तन्त्री और लय से युक्त है। यह श्लोक के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। मुनि स्नान के पश्चात् शोकातुर हृदय के साथ अपने आश्रम में लौटा। उसी समय वहाँ चतुर्मुख ब्रह्मा आए। वाल्मीकि ने यह सारी घटना उन्हें कह सुनाई और वह करुणापूर्ण पद्य भी उन्हें सुनाया। ब्रह्मा ने मुस्कराकर कहा—तुमने तो यह श्लोक की रचना ही कर डाली। मेरी इच्छा से ही यह सरस्वती तुम पर प्रवृत्त हुई है। अब तुम इसके आधार पर श्लोकबद्ध, मनोरम, पावन रामकथा की रचना करो। जब तक ये पर्वत और नदियां धरातल पर रहेंगी तबतक रामायण की कथा लोकों में चलती रहेगी।

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥ रा० १।२।३६-३७॥

चतुर्थ सर्ग के वर्णन के अनुसार वाल्मीकि ने राज्याभिषिक्त राम के सम्पूर्ण चरित को शोकोत्पन्न श्लोक में छन्दोबद्ध किया। उसने चौबीस हज़ार श्लोकों की रचना की। उन्हें पांच सौ सर्गों और उत्तरकाण्ड सहित सात काण्डों में विभक्त किया। महाकाव्य की रचना करके मुनि ने उसे कुश और लव को दे दिया। वे इसका गान करने लगे। उन्होंने यह आख्यान राम की सभा में स्वयं राम को भी सुनाया।

रामायण के इन वर्णनों से अयोध्याकाण्ड सर्ग ५६ में राम, लक्ष्मण और सीता के चित्रकूट में वाल्मीकि-आश्रम में गमन और उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत सीता

के वाल्मीकि-आश्रम में प्रवेश, कुशलव-जन्म, राम के अश्वमेध यज्ञ में वाल्मीकि के सम्मिलित होने, कुशलव द्वारा रामायणगान आदि से सिद्ध होता है कि वाल्मीकि राम के समकालीन थे, किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि रामायण के ये अंश प्रक्षिप्त माने जाते हैं। इसलिए इन वर्णनों और जनश्रुतियों के आधार पर हम वाल्मीकि के जीवन के विषय में कोई विश्वस्त मत स्थापित नहीं कर सकते।

पौराणिक परम्पराओं के अनुसार वाल्मीकि भार्गव गोत्रीय ब्राह्मण थे। इसके विपरीत हरिजनों का एक वर्ग भी अपने आप को वाल्मीकि का वंशज बताता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तुतः वाल्मीकि एक नहीं, दो थे। एक वाल्मीकि वह था जो ब्राह्मणवंश में उत्पन्न हुआ और जिसने रामायण की रचना की। दूसरा वाल्मीकि वह था जो किसी शूद्रकुल में उत्पन्न हुआ और वन में रहकर दस्यु-कार्य करता था। वह साधुओं के संग से रामभक्ति के द्वारा उत्तम ऋषि-पदवी को प्राप्त हुआ। उसके द्वारा 'राम राम' के स्थान पर 'मरा मरा' ऐसा उलटा जाप करने से पता चलता है कि वह उस समय उत्पन्न हुआ जब राम को भारतीय जनता ने ईश्वर का अवतार मान लिया था। 'मरा' शब्द हिन्दी भाषा का क्रिया-रूप होने से यह घटना दसवीं शताब्दी के बाद की हो सकती है। स्वयं वाल्मीकि शब्द सामान्य अर्थ का बोध कराता है। कोई भी व्यक्ति, दीर्घकाल तक तपस्या में निरत रहने से जिसके शरीर पर वल्मीक बन जाए, वाल्मीकि कहा जा सकता है। वाल्मीकि संज्ञा में किन्हीं दो व्यक्तित्वों का एकीकरण हो गया है। व्यक्तित्व के एकीकरण के ऐसे उदाहरणों का भारतीय साहित्य में अभाव नहीं है। यज्ञ-विध्वंसक, ब्राह्मणघातक, राक्षस रावण और वेदभाष्यकर्ता रावण इन दो व्यक्तित्वों के एकीकरण का उदाहरण हमारे सम्मुख है। इसी प्रकार सम्भव है यदुकुलोत्पन्न, कूटनीतिविशारद, महाभारत का योगिराज कृष्ण और गाय चराने वाला, मुरली बजाने वाला, स्नान करती हुई गोपियों के साथ खेलने वाला और वस्त्र चुराकर वृक्षों पर चढ़ जाने वाला कृष्ण पहले दो अलग-अलग व्यक्ति रहे हों। अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान वाल्मीकि दो व्यक्तित्वों के एकीकरण का परिणाम है।

सी० वी० वैद्य का मत है कि रामायण में प्रदर्शित भौगोलिक ज्ञान के आधार पर वाल्मीकि को अयोध्या के उत्तर-पश्चिम में किसी स्थान का निवासी माना जा सकता है। अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ई०) ने **बुद्धचरित** में लिखा है कि वह प्रथम कवि था जिसे राम-काव्य की रचना में सफलता मिली, जबकि च्यवन असफल रहा था। कृत्तिवासकृत बंगाली 'रामायण' (१५०० ई०) में वर्णित एक परम्परा के अनुसार वाल्मीकि च्यवन का प्रथम उल्लेख **शतपथ-ब्राह्मण** (सातवीं शताब्दी ई० पू० के मध्य) में उपलब्ध है। इसी के आधार पर **महाभारत** में च्यवन-विषयक वल्मीक-कथा का वर्णन हुआ है। इन उल्लेखों और वर्णनों से ऐसा

संकेत मिलता है कि वाल्मीकि भृगु वंशी च्यवन ऋषि का पुत्र या वंशज था।

आदि कवि और उसका आदि काव्य :

भारतीय साहित्य में वाल्मीकि को आदि-कवि और रामायण को आदि-काव्य कहा गया है। किसी ने कहा है कि वाल्मीकि के साथ ही संसार में 'कवि' संज्ञा का जन्म हुआ—जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्। रघुवंश में महाकवि कालिदास ने उसे आदि-कवि की संज्ञा दी है (कवेराद्यस्य शासनात्—रघु० १५।४१)। स्वयं रामायण में रामायण को आदिकाव्य कहा गया है (आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्—रा० ६।१३१।१०७)। कवि मात्र से केवल वाल्मीकि और शुक्र का ही बोध होता है (कविर्वाल्मीकिशुक्रयोरिति विश्वः)। कालिदास ने भी वाल्मीकि के लिए कवि मात्र का प्रयोग किया है (**कविः कुशलवावेव चकार नामतः—रघु० १५।३२)**।

वाल्मीकि के आदि-कवि होने और रामायण के आदि-काव्य होने की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है। प्रथम, क्रौञ्चवध की घटना से शोकातुर वाल्मीकि द्वारा नवीन अनुष्टुप् (श्लोक) छन्द की उत्पत्ति और उसके आदर्श पर रामायण की रचना। द्वितीय, रामायण के प्रथम सर्गबन्ध महाकाव्य होने के आधार पर।

वाल्मीकि से पूर्व वैदिक साहित्य में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु वहाँ केवल इतना ही है कि उसमें चार पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में आठ अक्षर। वाल्मीकि द्वारा इस संशोधित छन्द में भी चार पाद और प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं, किन्तु वहाँ प्रत्येक पाद का पांचवाँ अक्षर लघु है और छठा गुरु, और सातवां अक्षर प्रथम और तृतीय पाद में गुरु है और द्वितीय और चतुर्थ में लघु। यह अक्षर-क्रम की एक नई योजना थी जिसके कारण छन्द में एक विशेष लय का जन्म हुआ। इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि वह प्रथम कवि था जिसने वैदिक अनुष्टुप् छन्द में सुधार करके एक नए लययुक्त छन्द को जन्म दिया। वाल्मीकिकृत रामायण प्रथम काव्य है जो इस नवीन छन्द में रचा गया। वैदिक छन्दों में अक्षर-क्रम की योजना का अभाव और इसीलिए लयहीनता के कारण उनके प्रति विद्वानों का आकर्षण समाप्त हो चुका होगा। ब्राह्मण और आरण्यक तथा सूत्र ग्रन्थों के गद्य में लिखे जाने का यह भी एक कारण रहा होगा। ऐसे समय में वाल्मीकि ने एक नवीन लययुक्त अतः आकर्षक छन्द की सृष्टि करके और रामायण जैसे महान् ग्रन्थ की इस छन्द में रचना करके साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात किया। अतः वाल्मीकि आदिकवि और रामायण आदि-काव्य के नाम से प्रसिद्ध हैं।

रामायण को आदि-काव्य और वाल्मीकि को आदि-कवि कहे जाने का दूसरा कारण यह है कि रामायण एक सर्गबन्ध काव्य है और महाकाव्यों की परम्परा में प्रथम सोपान का काम करता है। भारतीय साहित्य में जहाँ महाभारत को एक इतिहासग्रन्थ माना गया है वहाँ रामायण को काव्य स्वीकार किया गया है। परवर्ती कवियों ने जहाँ अपने काव्यों और नाटकों के कथानक अधिकतर महाभारत से लिये हैं वहाँ महाकाव्यों के रचयिता कालिदास, भारवि, माघ आदि कवियों ने रामायण को अपने काव्यों के लिये आदर्श रूप में ग्रहण किया है। महाकाव्यों के विकास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि रामायण में महाकाव्य का प्रारम्भिक रूप सुरक्षित है। साहित्यदर्पण के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं:—

"जिसमें सर्गों का निबन्धन हो। जिसमें नायक कोई देवता या सद्वंश क्षत्रिय हो। जिसमें धीरोदात्त आदि गुण हों। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। शृङ्गार, वीर और शांत में से कोई एक रस अंगी होता है। अन्य रस गौण होते हैं। सब नाटक संधियां रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोकप्रसिद्ध या सज्जन संबंधी होती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार, या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है। कहीं खलों की निन्दा, कहीं सज्जनों का गुणगान होता है। इसमें न बहुत बड़े न बहुत छोटे आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें से प्रत्येक में एक ही छन्द होता है, किन्तु अन्तिम पद्य भिन्न छन्द का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होती है। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, (छहों) ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होता है। इसका नाम कवि के नाम पर, या वृत्त के आधार पर, अथवा चरित्र-नायक के नाम पर होता है। कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है। सर्ग की कथा पर सर्ग का नाम रखा जाता है।"

महाकाव्य के ये सभी लक्षण रामायण पर खरे उतरते हैं। यद्यपि रामायण मुख्य रूप से काण्डों में विभक्त है, तो भी उसका सर्गों में भी विभाजन हुआ है। स्वयं रामायण में पांच सौ सर्ग होने की घोषणा की गई है। वैसे रामायण के वर्तमान संस्करणों में कुछ अधिक ही सर्ग हैं। इन सर्गों का उनके वर्णित विषय के आधार पर नामकरण भी हुआ है। अनेक सर्गों के अन्तिम पद्य में भिन्न छन्द का प्रयोग हुआ है। सर्गों में प्रायः अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग हुआ है पर सुन्दर और युद्ध आदि काण्डों में कहीं कहीं एक ही सर्ग में एक से अधिक छन्दों का भी प्रयोग

मिलता है। स्वयं रामायण में सात छन्दों के प्रयोग की गर्वोक्ति की गई है।[1] इक्ष्वाकु वंशी क्षत्रिय राम इसका नायक है जो धीरोदात्त गुणों से युक्त है। इसमें वीररस अंगी है; शृङ्गार, करुण, शांत, रौद्र, भयानक आदि रस गौण रूप से आते हैं।[2] इसमें कथा की अन्विति है और उसके बीज, विकास, परिणति आदि को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसमें मूलतः इतिहास पर आधारित लोकप्रसिद्ध सत्पुरुष राम की कथा है। इसके अनुशीलन से यद्यपि चतुर्वर्ग की प्राप्ति सम्भव है तो भी मुख्य रूप से धर्म को ही इसका फल बताया गया है।[3] काव्य का आरम्भ कथावस्तु के निर्देश से हुआ है। इसमें खलों की निन्दा और सज्जनों का गुणवर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। इसमें नदीवर्णन यथा गंगावर्णन (२।५०।१२-२७), मन्दाकिनी-वर्णन (२।९५), गोदावरी वर्णन (३।१५।१२-३३); पर्वतवर्णन यथा चित्रकूटवर्णन (२।९४), माल्यवद्वर्णन (४।२७।११-१५), ऋष्यमूकमार्गवर्णन (३।७३); ऋतुवर्णन यथा हेमन्तवर्णन (३।१६), वसन्तवर्णन (४।१), वर्षर्तु वर्णन (४।२८), शरद्वर्णन (४।३०); नगरवर्णन यथा अयोध्यावर्णन (१।५;२।११४), लङ्कावर्णन (५।४), और इसके अतिरिक्त राजवर्णन (१।६), अमात्यवर्णन (१।७), अश्वमेधवर्णन (१।१४), रामादिविवाहवर्णन (१।७३), दूतयात्रावर्णन (२।६८।११-२२), पर्णशालावर्णन (२।९९।१८-२१), तापसाश्रमवर्णन (३।१।१-९), पञ्चवटीवर्णन (३।१५।११-१९), पम्पावर्णन (३।७५।११-२३), पुष्पकवर्णन ५।८), अशोकवाटिकावर्णन (५।१४-१५) जैसे अनेकानेक हृदयग्राही काव्यात्मक साङ्गोपाङ्ग वर्णन हैं। इस काव्य का नामकरण चरित्रनायक राम के नाम पर 'रामायण' हुआ है। महाकाव्य के इन सभी लक्षणों से युक्त होने और महाकाव्यों की परम्परा में उपलब्ध प्रथम महाकाव्य होने के कारण यदि इसे आदि-काव्य और इसके कर्ता वाल्मीकि को आदि-कवि कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

सी० वी० वैद्य का मत है कि वाल्मीकि इसलिये आदि कवि नहीं कहलाता कि उसने सर्गबन्ध महाकाव्य की रचना की, किन्तु इसीलिये कि उसने एक नए लौकिक छन्द की सृष्टि करके संस्कृत काव्य को एक नई दिशा दी। उससे पूर्व ऋषिजन गद्य में ही लिखते थे। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में रघुवंश १४।७० पर मल्लिनाथ की टीका से ये शब्द भी उद्धृत किए हैं—चाण्डालं यदाभर्त्संयत् तदा-

---

१. जातिभिः सप्तभिर्बद्धं तन्त्रीलयसमन्वितम्—रा० १।४।८॥

२. रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥रा० १।४।९॥

३. तौ राजपुत्रौ कार्त्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम्।
वाचोविधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ ॥ रा० १।४।१२॥

प्रभृति दत्तानि पद्यान्यभवन् पूर्वं वाक्यान्येवेति श्रूयते। उनका यह भी कथन है कि पहले रामायण के काण्डों का विभाजन सर्गों में नहीं अपितु अध्यायों में था। इसकी पुष्टि में उन्होंने भवभूति के उत्तररामचरित से लव के ये शब्द उद्धृत किए हैं—बालकाण्डस्यान्तिमेऽध्यायेऽयं श्लोक:

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मन:।
प्रियाभाव: स तु तया स्वगुणैरेव वर्धित:॥

यह श्लोक कुछ पाठभेद के साथ बालकाण्ड के अन्तिम सर्ग में उपलब्ध है। इसलिए नि:सन्देह यह उद्धरण रामायण से है, किन्तु यह अध्याय से ग्रहण किया गया बताया गया है न कि सर्ग से। इससे पता चलता है कि भवभूति के काल में रामायण सर्गबन्ध काव्य नहीं था। रामायण के सर्गों के अन्त में बड़े छन्दों वाले पद्य भी कालान्तर में रामायण को सर्गबन्ध काव्य बनाने की दृष्टि से रखे गए होंगे।[1]

डा. सी० वी० वैद्य का यह कहना कि 'वाल्मीकि से पूर्व सब कुछ गद्य में ही लिखा गया पद्य में नहीं' उचित नहीं है। यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं के एक बड़े अंश को छोड़ कर शेष ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद के मन्त्रों की रचना लगभग पद्य में ही हुई है। वस्तुत: पद्य की सृष्टि हृदय से होती है और गद्य की मस्तिष्क से। सृष्टि के आरम्भ में जब मनुष्य अपने चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण से अधिक प्रभावित होने के कारण अधिक भावुक था और उसके चिन्तन और मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ था, तो वह काव्यमय भाषा का ही प्रयोग करता था। यही कारण है कि संसार की सभी जातियों का प्रारम्भिक साहित्य पद्य में मिलता है। प्राचीन भारतीय साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। इसलिए वाल्मीकि प्रथम पद्य की रचना करने वाला नहीं अपितु पहले से विद्यमान वैदिक अनुष्टुप् छन्द में संशोधन करके उसे काव्य की एक नई विधा के योग्य बनाने वाला कवि था। इसलिए वह आदि-कवि कहलाया।

डा० वैद्य का रामायण को केवल इसलिए सर्गबन्ध काव्य न मानना कि 'उसका विभाजन सर्गों में न होकर अध्यायों में था और वर्तमान सर्गों के अन्त में पाए जाने वाले बड़े छन्दों वाले पद्य इसमें कालान्तर में जोड़ दिए गए' उचित नहीं है। प्रथम तो यह सम्भव है कि स्वयं भवभूति ने या किसी लिपिक ने प्रमाद-वश सर्ग के स्थान पर अध्याय का प्रयोग कर दिया हो। दूसरे, यदि हम यह मान भी लें कि प्रारम्भ में रामायण में सर्गों के स्थान पर अध्याय शब्द का प्रयोग था और सर्गों के अन्त में बड़े पद्य कालान्तर में जोड़े गए हैं तो भी रामायण के महाकाव्यत्व

१. *The Riddle of the Rāmāyaṇa*, p. 4

को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ऊपर दिखाया जा चुका है कि रामायण में महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते हैं। महाकाव्य परम्परा में प्रथम कृति होने के कारण यदि एक दो लक्षण पूर्ण रूप से घटित न भी हों तो भी यह नहीं कह सकते कि वह सर्गबन्ध महाकाव्य नहीं है। क्योंकि वह इस परम्परा की प्रथम कृति है अतः उसे आदिकाव्य और उसके कर्ता वाल्मीकि को आदि-कवि कहना उचित ही है।

रामायण का रचनाकाल

भारतीय परम्परा के अनुसार वाल्मीकि ने राम के जन्म से बहुत पहले रामायण की रचना कर दी थी। यह मत अन्धविश्वास पर आधारित होने के कारण किसी भी विद्वान् को मान्य नहीं है। रामायण के बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के वर्णनों के अनुसार वाल्मीकि राम के समकालीन माने जा सकते हैं, किन्तु रामायण के ये अंश प्रक्षिप्त कहे जाने के कारण यह मत भी सन्देह से मुक्त नहीं है।

ग्रिफ़िथ महोदय ने 'वाल्मीकीय रामायण' की भूमिका में कुछ पाश्चात्य विद्वानों के मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि आदि रामायण का रचनाकाल विलियम् जॉन्स के अनुसार २०२९ ई० पू०, गोरोसियो के अनुसार १३वीं शताब्दी ई० पू०, टोड के अनुसार ११०० ई० पू० और वेन्टलेय के अनुसार ९५० ई० पू० है।

डा० याकोबी का मत है कि रामायण महाभारत से पूर्व की रचना है। वे महाभारत पर रामायण की काव्यकला का प्रभाव स्वीकार करते हैं। उन्होंने रामायण की रचना का काल बुद्ध के जन्म से पूर्व माना है। उनका मत है कि आदि रामायण का रचनाकाल ईसापूर्व छठी और आठवीं शताब्दियों के मध्य का काल है और परिवर्द्धित रामायण का काल पांचवीं शताब्दी ईसापूर्व माना जा सकता है।

विन्तर्नित्स् महोदय ने याकोबी के इस मत का खण्डन करने का प्रयास किया है कि महाभारत पर रामायण की काव्यकला का प्रभाव है, पर वे याकोबी के इस मत से सहमत हैं कि प्रचलित रामायण वर्तमान महाभारत से प्राचीन है। उनका कथन है कि यदि महाभारत को उसका वर्तमान रूप ईसा की चौथी शताब्दी में मिला तो रामायण कम से कम इससे एक या दो शताब्दी पूर्व अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर चुकी होगी। वह यह भी मानते हैं कि बौद्ध धर्म के ग्रन्थ त्रिपिटक के समय रामायण अस्तित्व में नहीं आई थी। उन्होंने वर्तमान रामायण का समय ईसा की दूसरी शताब्दी और आदि रामायण का समय तृतीय शताब्दी ई० पू० स्वीकार किया है। डा० बुल्के भी विन्तर्नित्स् के इस मत से सहमत हैं।

ए० ए० मेक्डानल ने रामायण को महाभारत और बुद्ध के जन्म से पूर्व की कृति माना है। उन्होंने पालि गाथाओं और रामायण के श्लोकों का छन्दःशास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करके आदि रामायण के काल को छठी शताब्दी ईसापूर्व में और वर्तमान रामायण के काल को ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में रखा है। ए० बी० कीथ भी मेक्डानल से सहमत हैं और उन्होंने याकोबी के मत का अपनी युक्तियों से खण्डन किया है।

भारतीय विद्वानों में डा० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने ग्रन्थ The Riddle of the Rāmāyaṇa में लिखा है कि रामायण का प्राचीन अंश भारतीय इतिहास के उस काल से सम्बन्धित है जब (क) आर्यों की पूजापद्धति में यज्ञ का विशेष स्थान था, (ख) जब बौद्ध धर्म अस्तित्व में नहीं आया था, (ग) जब आर्यों में मूर्तिपूजा का प्रचलन नहीं था, (घ) जब ब्राह्मण और क्षत्रिय स्वतन्त्रतापूर्वक पशु-मांस का सेवन करते थे, (ङ) जब स्त्रियां वेद पढ़ती थीं और वैदिक अनुष्ठान सम्पन्न करती थीं, और (च) जब क्षत्रिय वेदविद्या में ब्राह्मणों से और ब्राह्मण धनुर्विद्या में क्षत्रियों से होड़ लेते थे। इन्होंने अनेक युक्तियों के आधार पर आदि रामायण का समय बुद्ध से पूर्व और वर्तमान रामायण का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० स्वीकार किया है। ए० डी० पुसाल्कर रामायण की रचना ईसापूर्व तीसरी शताब्दी स्वीकार करते हैं। डा० सुनीतिकुमार चेटर्जी के ग्रन्थ The Rāmāyaṇa में आदिकवि वाल्मीकि और आदि रामायण का रचनाकाल सातवीं शताब्दी ई० पू० के मध्य के पश्चात्, सम्भवतः छठी शताब्दी स्वीकार किया गया है। वे इसे बुद्ध के बाद की कृति स्वीकार नहीं करते (पृ० १७)। वे वर्तमान रामायण का काल ईसा की दूसरी शताब्दी स्वीकार करते हैं। उनका यह भी मत है कि रामायण की रचना महाभारत की रचना के पश्चात् प्रारम्भ हुई और महाभारत के पूर्णता को प्राप्त करने से लगभग दो शताब्दी पूर्व अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर चुकी थी।

रामायण के रचनाकाल का निर्णय महात्मा बुद्ध और पाणिनि के काल को आधार मानकर करने का प्रयास किया गया है। अयोध्याकाण्ड में एक स्थान पर जाबालि के नास्तिकवाद की निन्दा करते हुए महात्मा बुद्ध को राम के मुख से चोर कहलवाया गया है (यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि —रा० २।१०९।३४)। दो अन्य स्थलों पर श्रमण एवं श्रमणी शब्द का प्रयोग भी हुआ है (तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा—रा० १।१४।१२; या चीरमासाद्य जनस्य मध्ये स्थिता विसंज्ञा श्रमणीव काचित् रा०—२।३८।५)। इन स्थलों को छोड़कर, किसी अन्य स्थल पर बुद्ध, अथवा तत्कालीन प्रचलित

बौद्ध शब्दावलि का प्रयोग नहीं हुआ है। बुद्ध का यह प्रसंग न तो रामायण के कलकत्ता-संस्करण में है और न बम्बई-संस्करण में। बड़ौदा के संशोधित संस्करण में भी इसे प्रक्षिप्त माना गया है। अतः निश्चित रूप से यह स्थल प्रक्षिप्त है। इससे पता चलता है कि आदि रामायण महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म के प्रभाव से बिल्कुल अछूती थी। इसके अतिरिक्त यज्ञ, पशुबलि, वैदिक देवपूजा आदि के वर्णन रामायण को महात्मा बुद्ध के काल से पूर्व का सिद्ध करते हैं।

कुछ अन्य साक्ष्य भी रामायण को बुद्ध से पूर्ववर्ती सिद्ध करते हैं। रामायण में अयोध्या कोसल की राजधानी है, बौद्ध और जैन ग्रन्थों तथा पतञ्जलि के महाभाष्य में अयोध्या को साकेत कहा गया है। रामायण में मिथिला और विशाला दो अलग-अलग नगर हैं, मिथिला में राजा जनक राज्य करते थे और विशाला में सुमति। बुद्ध और महावीर के समय में ये दोनों नगर एक हो गए थे और इनका सांझा नाम वैशाली मिलता है। इसी वैशाली के कुण्ड ग्राम में भगवान् महावीर ने ५९८ ईसापूर्व में जन्म लिया था।

रामायण में शोण नदी और उसके निकटवर्ती उस प्रदेश का वर्णन है जहाँ कालान्तर में पाटलिपुत्र नगर बसा किन्तु पाटलिपुत्र का कोई उल्लेख नहीं है। रामायण के अनुसार राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ इस स्थान पर एक रात्रि व्यतीत करते हैं। पाटलिपुत्र को बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु (४९३-४६२ ई० पू०) ने बसाया था। इसी राजा ने राजगृह के एक स्तूप में महात्मा बुद्ध की अस्थियों की भी स्थापना कराई थी। इसी के संरक्षण में बौद्ध भिक्षुओं की प्रथम परिषद् भी बुलाई गई थी। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि रामायण की रचना अजातशत्रु, बुद्ध और महावीर के जन्म से पूर्व हो चुकी थी।

पाणिनि के सूत्रों में कौशल्य, केकय, सरयू आदि का उल्लेख तो है, किन्तु वाल्मीकि और उसकी कृति रामायण का कहीं भी संकेत नहीं है। इससे ऐसा समझा जा सकता है कि वाल्मीकि पाणिनि के परवर्ती थे। ऐसा स्वीकार करने से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वाल्मीकि ने ऐसे सैंकड़ों शब्दों का प्रयोग, जो पाणिनि के व्याकरण की दृष्टि में अशुद्ध हैं, कैसे कर दिया। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि ऋषि अपनी वाणी के लिए व्याकरण आदि के नियमों से बंधे नहीं होते। यह भी सम्भव है कि पाणिनि के अनुशासन को उस समय तक बहुत अधिक मान्यता प्राप्त न हुई हो। दूसरी ओर यदि यह स्वीकार किया जाए कि वाल्मीकि पाणिनि के पूर्ववर्ती थे, तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि पाणिनि ने रामायण जैसे उत्तमकोटि के ग्रन्थ के प्रयोगों की कैसे उपेक्षा कर दी। इसका उत्तर याकोबी ने दिया है कि पाणिनि जो कि रामायण के पात्रों से परिचित था, रामायण और वाल्मीकि से भी परिचित रहा होगा, किन्तु रामायण के गायकों का स्तर निम्न कोटि का होने के

कारण उनकी भाषा को शुद्ध और प्रामाणिक नहीं माना गया होगा। इस मत की पुष्टि पतञ्जलि के महाभाष्य से होती है, जिसमें कहा गया है, कि शिष्टों की भाषा ही स्वीकार्य है।

ऊपर की परिचर्चा से हम किसी विशेष निश्चय पर पहुँचने में सफल नहीं हो सकते, तो भी हम इतना कह सकते हैं कि मूल अथवा आदि रामायण की रचना बुद्ध तथा पाणिनि से पूर्व छठी शताब्दी में हो चुकी होगी और रामायण का वर्तमान स्वरूप ईसा के जन्म के लगभग निश्चित हो चुका होगा।

रामायण के प्रक्षिप्त अंश

डा० याकोबी, विन्तर्नित्स, और मेक्डानल आदि पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि वर्तमान रामायण में अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्ध-काण्ड तक का भाग ही मौलिक है, और बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड कालान्तर में जोड़े गए अंश हैं। इसके विपरीत भारतीय परम्परा यह मानती है कि चौबीस हज़ार श्लोकों से-युक्त और पाँच सौ सर्गों तथा सात काण्डों में विभक्त रामायण आदि-कवि वाल्मीकि की ही रचना है। विद्वानों ने इस समस्या को हल करने का प्रयास किया है कि वर्तमान रामायण में वाल्मीकिरचित मूल अंश कौन से हैं और उसे वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में परवर्ती अज्ञातनामा कवियों का क्या योगदान रहा है। अब यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है कि रामायण को वर्तमान स्वरूप देने के लिए कालान्तर में उसके सभी काण्डों में बहुत कुछ जोड़ दिया गया है और ये प्रक्षेप बालकाण्ड और उससे भी बढ़कर उत्तरकाण्ड में सर्वाधिक हैं। किन्तु उत्तरकाण्ड सारे का सारा प्रक्षिप्त नहीं है। इसके दो कारण हैं। प्रथम यह कि रावण का जीवनवृत्त और महानता का विस्तृत वर्णन कहीं न कहीं अपेक्षित था क्योंकि इसके विना काव्य अपूर्ण रह जाता और राम की महानता को भी शक्तिशाली आधार न मिलता। दूसरे, इस काव्य के गायन की दुःखद परिणति अर्थात् सीता के रसातलप्रवेश की योजना इतने सुन्दर ढंग से की गई है कि यदि इस घटना को काल्पनिक भी मान लिया जाए तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वयं महाकवि वाल्मीकि के बिना ऐसी योजना सम्भव न थी। वस्तुतः यह घटना इस काव्य की त्रासदी का अभिन्न अंग प्रतीत होती है। प्रथम शताब्दी ईसापूर्व में रामायण के वर्तमान स्वरूप के अस्तित्व में आने के समय तक उत्तरकाण्ड भी लगभग अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हो गया होगा, क्योंकि कालिदास ने रघुवंश में उत्तरकाण्ड की कथा दी है और उसी रूप तथा प्रायः

उन्हीं शब्दों में दी है। देखने मात्र से पता चलता है कि कालिदास के सर्ग वर्तमान उत्तरकाण्ड के सार मात्र हैं।[1]

डा० वैद्य ने वाल्मीकि के उत्तरवर्ती कवियों द्वारा रामायण को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने हेतु उसमें विभिन्न प्रक्षेप जोड़ने के लिए छः मुख्य कारण दिये हैं :—

(१) राम को विष्णु के अवतार रूप में प्रस्तुत करने के लिये : बौद्धों का अनुसरण करते हुए ब्राह्मण धर्म के धर्मगुरुओं ने महाभारत को उसका वर्तमान स्वरूप प्रदान करते हुए सर्वप्रथम कृष्ण को विष्णु का अवतार बनाने का सफल प्रयास किया। वासुदेव कृष्ण से पूर्ववर्ती राष्ट्रीय महापुरुषों को भी विष्णु का अवतार बनाने का प्रयास किया गया। इस नवीन प्रयास में राम को भी, जोकि अपने उच्च और पावन जीवन तथा आदर्शों के लिये विश्ववन्द्य था और जिसे बौद्धों ने भी **दशरथ-जातक** आदि में बोधिसत्त्व के रूप में स्वीकार कर लिया था, महाभारत के अन्तर्गत रामोपाख्यान में विष्णु के अवतार रूप में स्वीकार कर लिया गया। यह रामोपाख्यान वाल्मीकि-रामायण का सर्वप्रथम परिवर्तित संस्करण है, जिसमें राम को विष्णु के अवतार रूप में चित्रित किया गया है। अवतारवाद के इस नवीन सिद्धान्त के अनुकरण पर ही रामायण का संवर्धन करके उसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया गया। यद्यपि रामायण अपनी विशेष प्रकृति के कारण महाभारत के आकार और स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकी तो भी उसमें राम को विष्णु का अवतार बना डालने का भागीरथ प्रयास किया गया है।

राम के शुद्ध मानव अथवा मर्यादापुरुषोत्तम होने के प्रमाण तो रामायण में उपलब्ध हैं ही, किन्तु इस बात के प्रमाण भी उपलब्ध हैं कि राम विष्णु का अवतार नहीं था। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में कहा है कि—दशवर्षसहस्राणि दशवर्ष-शतानि च, रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति 'राम ११,००० वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् ब्रह्मलोक में वास करेगा।' यदि राम विष्णु का अवतार होता तो उसे ब्रह्मलोक की बजाय विष्णुलोक में जाना चाहिए था। विष्णु के अवतारों का सिद्धान्त पुराणों की देन है न कि महाभारत या रामायण की। रामायण में वराह को, विष्णु का अवतार नहीं किन्तु ब्रह्मा का अवतार कहा गया है :—

---

१. *The Riddle of the Rāmāyaṇa*, pp. 39-40.
तु० **रामाश्रय शर्मा**, A Reappraisal of the Integral Character of the Bālakāṇḍa and the Uttarakāṇḍa of Vālmīki's Rāmāyaṇa' *The Journal of the Deptt of Skt., University of Delhi*, I-1, 1971 pp. 38-48.

ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयम्भूर्दैवतैः सह ।
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम् ।। रा०

इससे स्पष्ट है कि आदि रामायण की रचना के समय विष्णु के दशावतार का सिद्धान्त विकसित नहीं हुआ था। रामायण में सीता को भी पूर्व जन्म में विष्णु-पत्नी नहीं अपितु एक ब्राह्मणकन्या वेदवती बताया गया है। इससे मूल रामायण में राम का विष्णु-अवतार होना खण्डित हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि वे सभी अंश जिनमें राम को विष्णु का अवतार कहा गया है प्रक्षिप्त हैं।

(२) रामायण के वर्णनों को अधिक काव्यमयता प्रदान करने के लिए इसमें बहुत से प्रक्षेप जोड़े गए। ऋतुओं, लंका नगरी और रावण के प्रासाद की भव्यता के अतिरिक्त वर्णनों; राम, तारा, सीता, कौसल्या और मन्दोदरी के अतिरिक्त विलापों तथा अनेकानेक पात्रों के मध्य अतिरिक्त वार्तालापों ने इसके आकार को दुगना कर दिया है। लगभग अनिवार्य रूप से प्रयुक्त लम्बे छन्दों, अनुष्टुप् छन्द में पूर्व से विद्यमान् वर्णनों की पुनरावृत्तियों, और कभी-कभी पूर्व तथा अपर वर्णनों से इनकी असंगतियों से ये प्रक्षेप सरलता से पहचाने जा सकते हैं। उदाहरण के लिये अयोध्याकाण्ड के सर्ग २२, २३, और २१ के ५१ से ६४ तक के लम्बे छन्दों वाले पद्यों को लीजिए। इनमें पूर्वकथन की आवृत्ति के सिवा और कुछ भी नहीं है। यही बात अयोध्याकाण्ड के सर्ग ३४ के ५५ से ६१ तक के लम्बे श्लोकों के लिए भी सत्य है। सुन्दरकाण्ड के सर्ग ५ और ८, जो कि लम्बे छन्दों के पद्यों में हैं, पुनरावृत्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इसी काण्ड के सर्ग २८ का भी यहाँ कोई औचित्य नहीं है। सर्ग २६ में राक्षसियों से धमकाई हुई सीता का विलाप है। सर्ग २७ में त्रिजटा अपने उस स्वप्न का वर्णन करती है जिसमें विजयी राम रावण का वध करता है। इसे सुनकर सीता प्रसन्न होती है। इसके पश्चात् सर्ग २८ में पुनः एकदम सीता का विलाप असंगत प्रतीत होता है।

(३) रामायण को एक सर्गबन्ध महाकाव्य बनाने की दृष्टि से भी अनेक प्रक्षेप इसमें जोड़े गए। अनुष्टुप् छन्द के परिष्कर्ता वाल्मीकि ने रामायण की रचना इसी छन्द में की होगी। कालान्तर में महाकाव्य के लक्षणों को पूर्ण रूप से रामायण पर लागू करने के लिए सर्गों के अन्त में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति आदि बड़े छन्दों के पद्य डाल दिए गए होंगे। इसी प्रकार कई सर्गों में एक से अधिक छन्दों का प्रयोग दिखाने के लिए भी उनमें बड़े छन्दों के पद्य जोड़ दिए गए होंगे। ऐसे पद्यों में प्रायः वर्णनों की आवृत्ति और कभी-कभी विरोधी कथन भी देखने को मिलते हैं।

(४) आख्यानों और उपाख्यानों का समावेश : रामायण को भी उपाख्यानों का आकर बनाने के लिए उसमें सैंकड़ों आख्यान और उपाख्यान उपयुक्त और

अनुपयुक्त स्थलों पर डाल दिए गए हैं। ये आख्यान और उपाख्यान अधिकतर उत्तरकाण्ड और बालकाण्ड में हैं। इन उपाख्यानों की योजना कई बार बड़ी अटपटी सी है। उदाहरण के लिए उत्तरकाण्ड के अन्दर अवस्था में छोटे और कम अनुभवी लक्ष्मण से अपने बड़े भाई राम को वृत्रवध का उपाख्यान सुनवाना हास्यास्पद ही कहा जाएगा। इस प्रकार के प्रक्षेपों से रामायण का कलेवर बहुत बढ़ गया।

(५) रामायण को ज्ञान और विज्ञान का विश्वकोष बनाने की इच्छा :

रामायण में भी दण्डनीति, राजनीति, दर्शन, आचार, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि के सिद्धान्तों को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया और पूरे के पूरे सर्ग इन विषयों पर रामायण में डाल दिए गए। उदाहरण के लिए अयोध्याकांड के सर्ग १०० में राम भरत को अयोध्या का समाचार आदि पूछने की बजाय स्थान और समय के प्रतिकूल राजनीति का उपदेश प्रारम्भ कर देता है। इसी प्रकार का एक भद्दा प्रयास सुग्रीव के मुख से भौगोलिक जानकारी दिलाकर किया गया है।

(६) चमत्कार और अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनों का समावेश : कालान्तर के कवियों ने रामायण को अधिक मनोहर और आकर्षक बनाने के लिए समय और स्थान की दृष्टि से अनपेक्षित होते हुए भी बहुत से प्रक्षेप इसमें डाल दिए। उदाहरण के लिए स्वर्ण-मृग की सृष्टि इसी प्रकार का प्रयास है जो स्पष्ट रूप से एक प्रक्षेप है। प्रसंग से ऐसा प्रतीत होता है कि राम और लक्ष्मण दोनों सीता को जटायु के संरक्षण में छोड़कर शिकार के लिए गए थे न कि केवल राम स्वर्ण-मृग को पकड़ने के लिए। भिक्षा के लिए आए हुए रावण को सीता ने यह नहीं कहा कि उसका पति स्वर्ण-मृग को पकड़ने के लिए गया है, अपितु यह कहा कि वह शिकार के लिए गया है और अभी प्रभूत वन्य सामग्रियों को और रुरु, गोधा, वराह आदि के मांस को लाएगा। लक्ष्मण द्वारा राक्षसों की मायिक प्रकृति के प्रति चेतावनी के बावजूद भी सीता रावण का स्वागत करती दीख पड़ती है। इससे स्वर्णमृग का प्रसंग विल्कुल अप्रासंगिक प्रतीत होता है।

उपर्युक्त कारणों से असंख्य प्रक्षिप्त अंश रामायण में उसके वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करने तक डाले जाते रहे हैं। ऐसे प्रक्षिप्त अंश अन्य काण्डों की अपेक्षा बालकाण्ड और मुख्य रूप से उत्तरकाण्ड में अधिक हैं।

रामायण का महत्त्व

(१) महाकाव्यों के विकास की परम्परा में रामायण प्रथम सोपान है। भारतीय परम्परा के अनुसार वाल्मीकि को आदि-कवि माना गया है। वैदिक अनुष्टुप् छन्द की योजना में सुधार करके वाल्मीकि ने उसे लयात्मक बनाया और उसमें रामकथा की रचना की। उसने इस काव्य में सर्गविभाजन, अलंकार-प्रयोग, प्रकृतिवर्णन और चरित्र-चित्रण आदि की लालित्यपूर्ण भाषा में ऐसी सुन्दर योजना का निर्माण किया कि यह ग्रन्थ जनसाधारण और विद्वत्समाज में उच्च सम्मान की

दृष्टि से देखा जाने लगा। पीछे आने वाले कवियों को इसकी रचना से एक नई प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्होंने इस काव्य को आदर्श रूप में स्वीकार करके अपने काव्यों की रचना की। इस प्रकार शनैः शनैः एक नई विधा अस्तित्व में आ गई, जिसे महाकाव्य के नाम से पुकारा गया। महाकवि कालिदास के कुमारसंभव और रघुवंश, भारवि का किरातार्जुनीय, माघ का शिशुपालवध, श्रीहर्ष का नैषधीयचरित आदि इसी परम्परा में उच्चकोटि के काव्य हैं।

(२) रामायण उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में : उत्तरकालीन कवियों ने रामायण को काव्य की एक नई विधा के रूप में ही ग्रहण नहीं किया अपितु उसे एक उपजीव्य काव्य के रूप में भी अपनाया। उन्होंने रामायण में वर्णित रामकथा और तत्सम्बन्धी घटनाओं तथा आख्यानों और उपाख्यानों को अपने महाकाव्यों, नाटकों, चम्पूग्रन्थों में कथानक के रूप में ग्रहण किया। उपजीव्य ग्रन्थों के रूप में भारतीय साहित्य में मुख्य रूप से दो ही ग्रन्थों का नाम लिया जा सकता है, महाभारत और रामायण। जहाँ महाभारत उत्तरकालीन महाकवियों और नाटककारों के लिए कथानकों का मुख्य स्रोत रहा है, वहाँ रामायण का स्थान आदर्शभूत आदि महाकाव्य और उपजीव्य ग्रन्थ इन दोनों ही दृष्टियों से बहुत ऊंचा है। महाकवि कालिदास का रघुवंश, कुमारदास का जानकीहरण, भट्टि का रावणवध अथवा भट्टिकाव्य तथा अन्य बहुत से महाकाव्यों के कथानक रामायण से लिये गए हैं। नाटकों में, भास के तेरह नाटकों में से प्रतिमा और अभिषेक, दिङ्नाग की कुन्द-माला, भवभूति के महावीरचरित और उत्तररामचरित, यशोवर्मन् का रामाभ्युदय, मायूराज का उदात्तराघव, मुरारि का अनर्घराघव, शक्तिभद्र का आश्चर्यचूडामणि, राजशेखर की बालरामायण, हस्तिमल्ल का मैथिलीकल्याण, क्षीरस्वामी का अभि-नवराघव, हनुमन्त का हनुमन्नाटक, जयदेव का प्रसन्नराघव, सुभट्ट का दूताङ्गद, आदि नाटकों की बहुत बड़ी परम्परा है। चम्पुओं में रामचम्पू आदि की गणना की जा सकती है। संस्कृत में ही नहीं अपितु पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन तथा हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी रामायण से लिये गए कथानकों पर आधारित हजारों काव्य, नाटक आदि साहित्य की रचना हुई। इनमें से हिन्दी में तुलसीदासकृत उत्तररामचरित, बंगाली में कृत्तिवासकृत रामायण और तमिल में कम्ब-रामायण का मुख्य स्थान है। इस प्रकार उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में रामायण का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(३) रामायण का ऐतिहासिक महत्व : रामायण के अध्ययन से प्राचीन भारत की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राम और लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ यज्ञ की रक्षा के लिए जाने, भरत को केकयदेश से बुलाने के लिए दूतों को भेजने और उसके अयोध्या में प्रत्यागमन, और राम का वनवास की अवस्था में विभिन्न स्थानों पर जाने की यात्राओं के वर्णन से

अनेक नगरों, नदियों, पर्वतों, आश्रमों आदि की भौगोलिक स्थिति का पता चलता है। यद्यपि सुग्रीव द्वारा सीता के अन्वेषण के लिए वानरों को चारों दिशाओं में भेजने का वर्णन प्रक्षिप्त है और सुग्रीव के निवास किष्किन्धा से दिशासंकेत भी ठीक प्रतीत नहीं होते (क्योंकि वहाँ विन्ध्य और नर्मदा को किष्किन्धा के दक्षिण में बताया गया है) तथापि यदि इस वर्णन को इन्द्रप्रस्थ या कुरुक्षेत्र में स्थित किसी व्यक्ति द्वारा मान लिया जाए तो दिशासंकेत ठीक प्रतीत होते हैं और इस वर्णन से भारतवर्ष के विभिन्न जनपदों, नगरों, नदियों, पर्वतों आदि की भौगोलिक स्थिति पर समुचित प्रकाश पड़ता है। रामायण से पता चलता है कि उत्तरी भारत में केकय, कोसल और मगध (मिथिला) ये तीन मुख्य राज्य थे जहाँ राजतन्त्रात्मक शासनपद्धति प्रचलित थी। राजा की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होता था। मध्य और दक्षिण भारत सारे का सारा वनों का प्रदेश था जिसमें वानर, यक्ष, राक्षस आदि जातियाँ वास करती थीं। बीच-बीच में आर्यऋषियों के आश्रम थे। दक्षिण में लङ्का द्वीप में राक्षसों का राजा रावण राज्य करता था। वानर, ऋक्ष आदि जातियां वस्तुतः मनुष्य जातियाँ थीं। हनुमान्, सुग्रीव, वाली, अङ्गद आदि के शारीरिक सौन्दर्य, बुद्धि, बल, विक्रम, ज्ञान आदि के वर्णन और उनके सुन्दर नगरों, भव्य प्रासादों के वर्णन से पता चलता है कि वानर एक सभ्य और सुसंस्कृत जाति थी। वानर ऋक्ष आदि की पूजा अथवा उनके चिह्न को शरीर पर धारण करने से ये लोग वानर, ऋक्ष, नाग आदि कहलाते थे। वानर लोग आर्यों के मित्र थे। राक्षस लोग इच्छानुसार रूप परिवर्तित कर लेते थे। परन्तु शनैः शनैः उनमें भी आर्य संस्कृति और सभ्यता का प्रचार हो रहा था। यह बात लंका में ब्रह्म-राक्षसों द्वारा वेदघोष के वर्णन से स्पष्ट हो जाती है। सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए डा० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने लिखा है कि आदि रामायण का वह काल था जब आर्यों की पूजा पद्धति में यज्ञ का मुख्य स्थान था, जब बौद्ध धर्म अज्ञात था, जब प्रतिमापूजा का अस्तित्व नहीं था, जब ब्राह्मण और क्षत्रिय पशुमांस का सेवन करते थे, जब स्त्रियाँ वेद पढ़ती थीं और संध्या हवन आदि क्रियाओं का अनुष्ठान करती थीं, और जब विद्याप्राप्ति में क्षत्रिय ब्राह्मणों से और धनुर्विद्या में ब्राह्मण क्षत्रियों से होड़ लेते थे।

(४) रामायण ज्ञान विज्ञान और सदाचार की शिक्षा का ग्रन्थ है : उत्तर-कालीन कवियों ने जहाँ राम को विष्णु का अवतार बनाकर रामायण को एक वैष्णवश्रुति बनाने का प्रयास किया, वहाँ महाभारत की तरह उसे ज्ञान-विज्ञान का भण्डार और सदाचार के उपदेश का कोश बनाने का भी यत्न किया। किन्तु रामायण की प्रकृति, आकार और स्थिति के कारण उनको वह सफलता न मिल सकी जो महा-भारत के संस्कर्ताओं को प्राप्त हुई थी। अतः रामायण में, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व,

विदुरनीति, गीता, अनुगीता आदि जैसे स्थल तो दुर्लभ हैं, फिर भी जहाँ अवसर मिल सका है वहीं इसमें ज्ञान-विज्ञान और उपदेश-विषयक अंश डालने का प्रयास किया गया है। यही कारण है कि इसमें वार्तालापों और प्रश्नोत्तर के द्वारा राजा से हीन राज्य की दशा, अच्छे और न्यायप्रिय राजा के गुणों, राजनीति, दण्डनीति, सत्यता, सत्संगति के महत्त्व, दया, सन्तोष आदि पर बड़े बड़े प्रसंगों और लोकोक्तियों के द्वारा समुचित प्रकाश डाला गया है।

(५) रामायण लोकप्रिय ग्रन्थ के रूप में : अपने काव्य-सौष्ठव, बोलचाल की सरल और लालित्यपूर्ण भाषा, प्रसादगुणयुक्त शैली, पात्रों के आदर्श चरित्र-चित्रण तथा अपने ज्ञान-विज्ञान के कारण रामायण को जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई, संस्कृत में उतनी लोकप्रियता किसी भी अन्य ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुई है। यही कारण है कि चारण लोग इसका गायन प्रजाजनों में किया करते थे। भारत की प्राचीन और आधुनिक सभी भाषाओं में इस ग्रन्थ को किसी न किसी रूप में अपनाने का प्रयास किया गया। मूर्तियों और अन्य कलाकृतियों में रामायण का प्रभाव स्पष्ट है। इस ग्रन्थ के शाश्वत प्रभाव का ही कारण है कि राम प्रत्येक भारतीय के हृदय में समाया हुआ है। कोई उसे साक्षात् विष्णु, कोई ईश्वर का अवतार और कोई मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में याद करता है। सब जगह राम का जयजयकार हो रहा है। केवल भारत में ही नहीं अपितु बर्मा, मलाया, कम्बोदिया, बाली, इन्दोनेशिया, सुमात्रा, जावा, तिब्बत, चीन, कोरिया आदि सभी देशों में रामकथा को किसी न किसी रूप में अपना लिया गया है। आजकल इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, हालैंड, संयुक्त-गणराज्य अमेरिका और रूस में भी रामायण की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है, और उसका अध्ययन, अध्यापन और शोध सब जगह हो रहा है।

जो यश, लोकप्रियता और महत्त्व रामायण को प्राप्त है वह संसार के थोड़े ही ग्रन्थों को प्राप्त हो सका है। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी ने लिखा है कि रामायण संसार भर की पन्द्रह मुख्य कृतियों में अपना विशेष स्थान रखती है।

रामायण का काव्य-सौष्ठव

महाकाव्य के सभी लक्षण रामायण में उपलब्ध हैं। विषय की उदात्तता घटनाओं के वैचित्र्यपूर्ण विन्यास, भाषा के सौष्ठव, शैली, विचारों की मनोहरता तथा रमणीय दृश्यों के सुन्दर चित्रण के कारण अलंकृत शैली के काव्यों में रामायण को प्रमुख स्थान प्राप्त है। महाकवि वाल्मीकि की इस अनुपम कृति में भावों का गाम्भीर्य, भाषा का लालित्य, छन्दों का औचित्य और रसों का परिपाक होमर और मिल्टन जैसे लोकप्रसिद्ध कवियों की कृतियों की अपेक्षा कहीं अधिक है। इस महाकाव्य में मानव की अन्तःप्रकृति का जैसा सूक्ष्म, स्वाभाविक और सुन्दर

विश्लेषण हुआ है वैसा ही बाह्य प्रकृति का भी सजीव एवं याथातथ्य चित्रण हुआ है। मानव मनोवृत्तियों का जैसा व्यापक और विशद निरूपण इस ग्रन्थरत्न में हुआ है, ऐसा अन्यत्र दुर्लभ है। आदिकवि की कमनीय काव्यकला उनके अपने पदों में नृत्य करती हुई सी दिखाई देती है। अतः कविता-कल्पद्रुम के कमनीयकोकिल रूप वाल्मीकि का कलकूजन किसे आनन्दविभोर नहीं करता। इसीलिए तो भावविभोर होकर किसी कवि के हृदय से अनायास ये शब्द निकल पड़े :—

> **कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।**
> **आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥**

नीचे रामायण के काव्य-सौन्दर्य के कुछ पक्षों पर चर्चा की जाएगी :—

(१) रसपरिपाक :— साहित्यदर्पण के लेखक विश्वनाथ ने काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' (वाक्यं रसात्मकं काव्यम्)। इस परिभाषा के अनुसार काव्य में रसात्मकता का होना अनिवार्य है। महाकवि वाल्मीकि के इस सुन्दर काव्य में रसों का परिपाक समुचित रूप से हुआ है। करुण रस का तो इसमें विशेष स्थान है और कुछ विद्वानों के अनुसार करुणरस इसमें अङ्ग रस है। करुणभाव के कारण ही आदिकवि को लौकिक अनुष्टुप् छन्द की प्राप्ति हुई और उसने करुण को ही अपने काव्य में प्रधान रस के रूप में स्वीकार किया है। ध्वन्यालोककार ने तो रामायण में करुण रस ही स्वीकार किया है (रामायणे हि करुणो रसः)। राम के वनगमन के समय अयोध्या के पौरजनों का विलाप (रा० २।४०-४१), सीताहरण के पश्चात् उसका अन्वेषण करते हुए उन्मत्त राम का विलाप (रा० ३।६०-६३), रावण से त्रस्त और राक्षसियों से भर्त्सित सीता का विलाप ऐसे स्थल हैं जहाँ करुण-रस का पूर्णरूपेण परिपाक देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए राम-वनगमन पर अयोध्या तथा उसके नागरिकों की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

> नाग्निहोत्राण्यहूयन्त नापचन् गृहमेधिनः ।
> अकुर्वन् न प्रजाः कार्यं सूर्यश्चान्तरधीयत ॥
> व्यसृजन् कवलान् नागा गावो वत्सान् न पाययन् ।
> पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥ रा० २।४१।६-१०॥

सीता के वियोग में उन्मत्त राम वन के वृक्षों, पशुओं और पक्षियों से पूछता फिरता है—बताओ मेरी सीता कहाँ है ?

> अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतसम् ।
> त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम् ॥
> यदि ताल त्वया दृष्टा पक्वतालफलस्तनी ।
> कथयस्व वरारोहां कारुण्यं यदि ते मयि ॥
>
> —रा० ३।६०।१७-१८

अशोकवाटिका में प्राणत्याग का निश्चय करके विलाप करती हुई सीता के ये शब्द किसके हृदय में करुणा उत्पन्न नहीं कर देंगे—

अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् ।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेनावशीर्यते ॥
धिङ् मामनार्यामसतीं याहं तेन विनाकृता ।
मुहूर्त्तमपि रक्षामि जीवितं पापजीविता ॥रा० ५।२६।६-७॥

सीता का अपहरण करने के लिए भिक्षु का छद्मवेश बनाकर सीता के पास आने वाले रावण के ये वचन शृङ्गाररस का उत्तम उदाहरण हैं :—

भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ।
समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डरा दशनास्तव ॥
विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ।
विशालं जघनं पीनमूरू करिकरोपमौ ॥ रा० ३।४६।१७-१८॥

इसी प्रकार वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों का भी स्थान स्थान पर सुन्दर परिपाक देखने को मिलता है । उदाहरण के लिए वीर ३।२५-३०, रौद्र ३।१९ और भयानक ३।२३॥

काव्य के प्रारम्भ में ही इस काव्य के सब रसों से सम्पन्न होने की घोषणा की गई है :—

रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥ रा० १।४।९॥

(२) **अलङ्कार :** संस्कृत साहित्य में अलंकारों का विशेष महत्त्व है । अलंकार-हीन कविता विधवा स्त्री के समान समझी जाती है । अलंकारों की यह प्रथा आदि-कवि वाल्मीकि के आदि-ग्रन्थ रामायण में भी अपने विकसित रूप में देखने को मिलती है । रामायण में अलंकारों का इतना प्राचुर्य है कि प्रत्येक पांचवीं पंक्ति में कोई न कोई अलंकार मिलेगा । कभी कभी तो लगातार अलंकारों की छटा देखने को मिलती है । आदिकवि के ये अलंकार प्रयास-साध्यता से रहित, स्वाभाविक और प्रसंगानुकूल होते हैं । उसके अलंकार सामान्य हैं और जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र से लिए गए हैं, परन्तु कहीं कहीं वैदुष्यपूर्ण और असामान्य अलंकारों के भी दर्शन होते हैं । इन अलंकारों में तात्कालिक समाज और संस्कृति का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है । रामायण में प्रयुक्त अलंकारों में मुख्य अलंकार उपमा, मालोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति हैं । इसके अतिरिक्त अन्य अलंकार भी उपलब्ध हैं ।

उपमा—रामायण में प्रयुक्त मुख्य अलंकार है । यदि गणना की जाए तो अलंकारों की समस्त संख्या की दोतिहाई उपमाएँ ही मिलेंगी । ये उपमाएँ बहुत

संक्षिप्त और सरल हैं और पाठक को अनायास ही हृदयङ्गम हो जाती हैं। यद्यपि कालिदास अपनी उपमाओं के लिए प्रसिद्ध है (उपमा कालिदासस्य) तो भी रामायण में वाल्मीकि कालिदास से आगे बढ़ा प्रतीत होता है। उपमा के कुछ सुन्दर उदाहरण देखिए :—

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा। रा० ५।२१।१६॥
वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः। रा० ५।१८।२९॥

निम्न पद्य में कहा गया है कि अलंकारहीना सीता को पहिचानने में हनुमान् को उतनी ही कठिनाई हुई जितनी संस्कारहीन अतः भिन्नार्थ को प्राप्त हुई वाणी को समझने में होती है :—

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलङ्कृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्॥ रा० ५।१५।३९॥

निम्न पद्य में मन को हरने की उपमा गरुड द्वारा सांप को उठा ले जाने से दी गई है :—

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि।
मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा॥ रा० ५।२०।२९॥

काले वर्ण वाले, महान् श्रोणी सूत्र से सुसंवृत रावण की उपमा अमृतमन्थन के समय शेषनाग से संनद्ध मन्दराचल से दी गई है :—

श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः।
अमृतोत्पादनद्धेन भुजगेनेव मन्दरः॥ रा० ५।२२।२६॥

अन्य कवियों द्वारा जहाँ मालोपमा के प्रयोग में प्रयाससाध्यता और कृत्रिमता स्पष्ट झलक पड़ती है वहाँ वाल्मीकि द्वारा मालोपमा का प्रयोग भी स्वाभाविक और मौलिक है। कहीं कहीं तो सम्पूर्ण के सम्पूर्ण सर्ग में मालोपमा की छटा देखने को मिलती है, जैसे भरत द्वारा शोकसंतप्त अयोध्या के वर्णन में (रा० ३।११४)। सुन्दरकाण्ड में रावण से संत्रस्त सीता का मालोपमा के द्वारा समस्त सर्ग में सुन्दर वर्णन हुआ है। उसी सर्ग में से एक अंश देखिए :—

आयतीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहृतामिव॥
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव।
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम्॥
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव।
पौर्णमासीमिव निशां राहुग्रस्तेन्दुमण्डलाम्॥ रा० ५।१९।१२-१४॥

रूपक उपमा की अपेक्षा वाल्मीकि को कुछ कम प्रिय रहा है। कारण कि रूपक द्वारा बिम्ब कुछ अस्पष्ट ही रहता है, जबकि ऋषिहृदय अधिक सरल, स्पष्ट-

वादी और दुरावरहित होता है। तथापि रामायण में यत्रतत्र रूपकों की छटा देखने को मिलती है। उपमा की तरह रूपक भी प्रायः प्रकृति अर्थात् समुद्र, पर्वत, नदी, हाथी, सर्प आदि से ग्रहण किए गये हैं। निम्न पद्य में रामरूपी दिवाकर को शरजाल रूपी किरणों वाला बताया है :—

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः। रा० ५।३७।१८॥

निम्न पद्य में रामरूपी गरुड़ के द्वारा राक्षसेन्द्र-रूपी सर्पों को उठा ले जाने का वर्णन हुआ है :—

राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान्॥ रा० ५।२१।२७-२८॥

मालोपमा की तरह मालारूपक के स्थल भी रामायण में कम नहीं हैं। निम्न पद्यों में शोकसंतप्त दशरथ द्वारा शोकसागर का वर्णन देखिए :—

रामशोकमहावेगः सीताविरहपारगः।
श्वसितोर्मिमहावर्तो बाष्पफेनजलाविलः॥
बाहुविक्षेपमीनौघो विक्रन्दितमहास्वनः।
प्रकीर्णकेशशैवालः कैकेयीवडवामुखः॥
ममाश्रुवेगप्रभवः कुब्जावाक्यमहाग्रहः।
वरवेलो नृशंसाया रामप्रव्राजनायतः॥
यस्मिन् बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना।
दुस्तरो जीवता देवि ममायं शोकसागरः॥ रा० २।५९।२९-३२॥

राम को मिलने जाते समय गुह से समागम होने पर दुःखसन्तप्त भरत का वर्णन रूपक द्वारा अत्यन्त सुन्दर हुआ है :—

ध्याननिर्दरशैलेन विनिःश्वासितधातुना।
दैन्यपादपसंघेन शोकायासाधिशृङ्गिणा॥
प्रमोहानन्तसत्त्वेन संतापौषधिवेणुना।
आक्रान्तो दुःखशैलेन महता कैकयीसुतः॥ रा० २।८५।१९-२०॥

उत्प्रेक्षाः—सीता को राम के पास संकल्परूपी घोड़ों से जुते हुए मनोरथों से जाती हुई सी बताया गया है :—

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः॥ रा० ५।१९।७॥

एक अन्य उदाहरण देखिये :—

आरुह्य गिरिसंकाशं प्रासादं हरियूथपः।
बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः॥ रा० ५।४३।४॥

नीचे कुछ अन्य अलङ्कारों के उदाहरण देखिए :—

व्यतिरेक : लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत् ।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥ रा० २।११२।१८॥

निदर्शना : राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि रावण ॥
क्षुधितस्य हि सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः ।
आशीविषस्य वदनाद् दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि ।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि ॥ रा० ३।४७।३८-४०

दृष्टान्त : कथं धेनुः स्वकं वत्सं गच्छन्तं नानुगच्छति ।
अहं त्वनुगमिष्यामि पुत्र यत्र गमिष्यसि ॥ रा० २।२४।९॥

तुल्ययोगिता : निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥
रा० ४।२८।२५॥

विषम : क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्त्रं तपः क्व च ।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥ रा० ३।९।२७॥

उपमेयोपमा : सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ।
सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥ रा० ६।४।१२०॥

रामायण में केवल उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों के द्वारा ही प्राकृतिक बिम्बों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है अपितु स्वभावोक्ति का भी प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के लिए बाहुल्य से प्रयोग हुआ है। स्वभावोक्ति के द्वारा वाल्मीकि पाठक की आंखों के सम्मुख एक मनोरम चित्र अथवा दृश्य उपस्थित कर देते हैं। वस्तुओं को उनके यथावत् स्वरूप में प्रस्तुत करके कवि पाठक के हृदय में विशेष प्रकार के भावों को जागृत करने में समर्थ होता है। उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति वर्षर्तु-वर्णन को पढ़ता है तो वर्षाकाल का सम्पूर्ण दृश्य उसकी आंखों के सामने उपस्थित हो जाता है। स्वर्णमृग का वर्णन देखिए :—

स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ।
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः ॥
रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ।
किञ्चिदभ्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलदलाधरः ॥
कुन्देन्दुवज्रसंकाशमुदरं चास्य भास्वरम् ।
मधूकनिभपार्श्वश्च पद्मकिञ्जल्कसंनिभः ॥
वैडूरसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः ।
इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजता ॥

मनोहरः स्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः ।
क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ।। रा० ३।४२।१५-१६।।

इसी प्रकार हनुमान् द्वारा समुद्रलंघन का दृश्य भी पाठकों की आंखों के सामने एक सजीव चित्र उपस्थित कर देता है :—

बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ ।
ससाद च कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च ।।
संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ।।
मार्गमालोकयन्दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणः ।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ।।
पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः ।
निकुञ्च्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन् महाबलः ।। ५।१।३५-३८।।

अलंकारों की तरह वाल्मीकि ने लोकोक्तियों का भी सशक्त और प्रभावोत्पादक प्रयोग किया है । उपर्युक्त लोकोक्तियों के द्वारा अधिक कठिन और जटिल विचारों को भी प्रस्तुत किया जा सकता है । कुछ विद्वानों ने लोकोक्ति को भी अलंकारों के अन्तर्गत स्वीकार किया है । लोकोक्ति के माध्यम से वाल्मीकि मानव-प्रकृति, मनःस्थिति, शिक्षा और यहाँ तक कि शाश्वत सत्य को भी बिम्बित करने में सफल सिद्ध हुआ है । उदाहरण के रूप में कुछ लोकोक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।। रा० ३।३७।२।।
दुःखितः सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गतिः । रा० ४।८।४०।।
भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि ।
एषा विरहिता तेन भूषणार्हा न शोभते ।। रा० ५।१६।२६।।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते । रा० ५।२४।२२।।
परीतकाला हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ।
रा० ६।१६।२६।।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । रा० ५।२५।१२।।

महाकवि वाल्मीकि ने अपने अलंकारों में कल्पना का बहुत सहारा लिया है । वाल्मीकि की कल्पना-शक्ति बहुत ऊंचे स्तर की है और उसकी सहायता से वह लौकिक, अलौकिक तथा अन्य मानवक्रियाकलाप विषयक बिम्बों की सृष्टि करने में समर्थ हो सका है । कल्पना-शक्ति के द्वारा उसने मानव कर्म को प्रकृतिवर्णन का माध्यम बना दिया है । कवि को पर्वत वृक्षों से नाचता हुआ सा तथा वायु के शोर

से गाता हुआ सा जान पड़ता है। कभी-कभी तो अपनी उच्च कल्पना-शक्ति के द्वारा कवि को काले मेघों से आच्छादित, जलधाराओं से युक्त और वायु से आपूरित गुहा वाले पर्वत कृष्णाजिन धारण करने वाले, यज्ञोपवीत पहने हुए और वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए ब्राह्मण प्रतीत होते हैं :—

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥ रा० ४।२८।१०॥

नीले मेघ में चमचमाती हुई बिजली उसे रावण की गोद में छटपटाती हुई सीता दिखाई देती है :—

नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ॥ रा० ४।२८।१२॥

यद्यपि कभी कभी उसकी कल्पनाएँ दूरारूढ होती हैं, फिर भी सरल, सुगम और आसानी से समझ में आने वाली होती हैं।

(३) छन्द : रामायण में अनुष्टुप् छन्द का संशोधन और परिष्कार स्वयं वाल्मीकि ने वैदिक अनुष्टुप् से किया था। इसीलिए वह आदि-कवि भी कहलाता है। यह छन्द लघु और गुरु के विशेष क्रम और लय से युक्त है। अतः इस छन्द की उत्पत्ति के साथ ही काव्य-जगत् में एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अतिरिक्त रामायण में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थविल आदि बड़े छन्दों का प्रयोग भी मिलता है। ये बड़े छन्द प्रायः सर्गों के अन्त में आते हैं, परन्तु कहीं कहीं पूरे के पूरे सर्ग भी इन छन्दों में उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि वाल्मीकि ने स्वयं इन छन्दों का प्रयोग नहीं किया होगा और वे प्रसंग जहाँ जहाँ इनका प्रयोग हुआ है प्रक्षिप्त हैं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि नए वार्तालापों, विलापों तथा ऋतुओं, नदियों आश्रमों आदि के वर्णनों में अधिक काव्यात्मकता लाने के लिए नई सामग्री का समावेश किया गया। इन छन्दों के प्रयोग से रामायण की काव्यात्मकता में अभिवृद्धि हुई है और उसे सर्गबन्ध काव्य बनने में सहायता मिली है।

(४) प्रकृति-वर्णन : रामायण में प्रकृतिवर्णन का अपना ही सौष्ठव है। अरण्य, किष्किन्धा और सुन्दरकाण्ड की घटनाएं तो विशेष रूप से प्रकृति सुन्दरी की गोद में घटित हुई हैं और वहाँ कवि को प्रकृतिचित्रण का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। इन काण्डों में वनों, पर्वतों, नदियों, आश्रमों, झीलों, ऋतुओं, मृगपशुपक्षियों आदि का वर्णन अद्वितीय है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में लंका तक समस्त भारतवर्ष एक सुन्दर उपवन के रूप में चित्रित किया गया है। गंगा और यमुना को पार करते ही दक्षिण का समस्त भूभाग एक महारण्य है, जिसमें अनेक नदियां, पर्वत, झीलें और मुनियों के आश्रम हैं। इन वनों, पर्वतों, आश्रमों और उनमें वास करने वाले विविध पशुपक्षियों तथा रंगबिरंगे सुगन्धित पुष्पों और सुन्दर स्वादु फलों से

लदे वृक्षों, उनमें आने वाले विविध ऋतुओं आदि का वर्णन देखते ही बनता है। अन्य काण्डों में भी प्रकृति वर्णन के अवसर को कवि हाथ से जाने नहीं देता। बालकाण्ड में ही ताटका-वन का एक वर्णन देखिए :—

अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणनादितम्।
भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः॥
नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः।
सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चोपशोभितम्॥
धवाश्वकर्णखदिरैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः।
संकीर्णं वदरीभिश्च किं न्वेतद्द दारुणं वनम्॥१।२४।१३-१५॥

इसी काण्ड में रात्रि का एक वर्णन देखिए :—

निष्पन्दास्तरवः सर्वे निलीना मृगपक्षिणः।
नैशेन तमसा व्याप्ता दिशश्च रघुनन्दन॥
शनैर्वियुज्यते सन्ध्या नभो नेत्रैरिवावृतम्।
नक्षत्रतारागहनं ज्योतिर्भिरवभासते॥
उत्तिष्ठति च शीतांशुः शशी लोकतमोनुदः।
ह्लादयन् प्राणिनां लोके मनांसि प्रभया स्वया॥
नैशानि शर्वभूतानि प्रचरन्ति ततस्ततः।
यक्षराक्षससंघाश्च रौद्राश्च पिशिताशनाः॥ रा० १।३४।१५-१८॥

नीचे मन्दाकिनी नदी के वर्णन से एक अंश प्रस्तुत है :—

क्वचिन्मणिनिकाशोदां क्वचित्पुलिनशालिनीम्।
क्वचित् सिद्धजनाकीर्णां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्॥
निर्धूतान् वायुना पश्य विततान् पुष्पसंचयान्।
पोप्लूयमानानपरान् पश्य त्वं जलमध्यगान्॥
पश्यैतान् वल्गुवचसो रथाङ्गाह्वयना द्विजाः।
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः॥ रा० २।९५।९-११॥

नीचे पम्पा के मनोहर वर्णन से कुछ पद्य दिए जाते हैं :—

पुष्पितैः करवीरैश्च पुंनागैश्च सुपुष्पितैः।
मालतीकुन्दगुल्मैश्च मण्डीरैर्निचुलैस्तथा॥
अशोकैः सप्तपर्णैश्च केतकैरतिमुक्तकैः।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रमदामिव भूषिताम्॥ रा० ३।७५।१६-१७॥

वसन्तकाल में नृत्य करते हुए मोरों का यह स्वाभाविक वर्णन किसके मन को नहीं हर लेगा :—

अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः॥
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव।

शिखिनीभिः परिवृतास्त एते मदमूर्च्छिताः ॥
मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धनाः ।
पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति ॥
शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुषु ।
तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्युपधावति ॥ रा० ४।१।३६-३६॥

अशोक-वाटिका के वर्णन के कुछ पद्य देखिए :—

तां स नन्दनसंकाशां मृगपक्षिभिरावृताम् ।
हर्म्यप्रासादसंबाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥
काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥
सर्वर्तुकुसुमै रम्यां फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥
प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत ।
निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत् ॥ रा० ५।१५।३-६॥

उदित होते हुए चन्द्रमा के वर्णन में से केवल दो पद्य उद्धृत किये जाते हैं :—

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो महाचलः श्वेत इवोच्चशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बुनदबद्धशृङ्गो रराज चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥
विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को रराज चन्द्रो भगवाञ्छशाङ्कः ॥ रा० ५।५।५-६॥

दण्डकारण्य में स्थित एक आश्रम का वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है:—

सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च ।
प्रशान्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥
फुल्लपङ्कजषण्डानि प्रसन्नसलिलानि च ।
कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च ।
रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥ रा० ३।८।१३-१५॥

रामायण में वर्षर्तु-वर्णन तो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। नीचे केवल कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं :—

जाता वनान्ता शिखिसंप्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः ।
जाता वृषा गोषु समानकामा जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥
वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गाः ॥
रा० ४।२८।२६-२७॥

क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः ।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥३३
वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः समुदीर्णघोषाः ।
प्रनष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलैर्विप्रतिपन्नमार्गाः ॥४५॥

हेमन्तवर्णन भी बहुत सुन्दर है। अत्यन्त प्यासा वनैला हाथी ठंडे जल को सूँड से छूकर ठंड के कारण बिना पिये वापस हटा लेता है और जलचारी पक्षी अप्रगल्भ योद्धा की तरह जल का अवगाहन नहीं करते :—

स्पृशंस्तु विपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥

एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ।
नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् ॥ रा० ३।१६।२१-२२॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि का प्रकृतिवर्णन स्वाभाविक है और उसकी सुकुमारता, सरसता और सुन्दरता सहसा ही पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। उसने प्रायः प्रकृति के शान्त स्वरूप का ही वर्णन किया है, यद्यपि कहीं कहीं उग्र रूप भी देखने को मिलता है। वस्तुतः प्रकृति-चित्रण में वाल्मीकि कालिदास को भी पीछे छोड़ गया है।

(५) **चरित्र-चित्रण** : रामायण का काव्यसौन्दर्य केवल उत्तम रस-परिपाक, उच्चकोटि की अलंकार-योजना और आकर्षक प्रकृतिचित्रण के कारण ही नहीं है, अपितु इसमें पात्रों के चरित्र का चित्रण भी बहुत अनूठा बन पड़ा है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में कवि ने ऐतिहासिक, पौराणिक एवं काल्पनिक घटनाओं को आधार बनाकर जीवन के विविध पक्षों का वर्णन किया है। उसने पात्र के बाह्य रूप, व्यक्तित्व तथा आन्तरिक प्रकृति अर्थात् स्वभावगत विशेषताओं, और असामान्य परिस्थितियों के कारण उसके शारीरिक एवं मानसिक व्यापारों में होने वाले परिवर्तनों का समूचा चित्र भी चित्रित किया है।

यद्यपि वर्तमान परिवर्द्धित रामायण के संस्करणों में राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, तथापि प्रक्षेपों को छोड़कर मूल रामायण के अध्ययन से पता चलता है कि वाल्मीकि ने अपने पात्रों को शुद्ध मानवीय रूप में प्रस्तुत किया है, भले ही उनमें से कुछ को अलौकिक और मायिक सिद्धियों से युक्त किया है। राम की पितृभक्ति, भ्रातृस्नेह, एकपत्नीव्रत और भृत्यवात्सल्य अपने आप में आदर्श हैं। पिता के वचनों की सत्यता के लिए वह राजपाट को छोड़कर चौदह वर्ष के वनवास के लिए एकदम तय्यार हो जाता है। सीतापहरण पर वह पत्नीवियोग में उन्मत्त हो जाता है और वृक्षों, वेलों तथा पशुपक्षियों से पूछता फिरता है—मेरी सीता कहाँ है? लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सभी भाइयों से उसका निष्कपट स्नेह है। उसे भरत की

नियत पर बिल्कुल भी सन्देह नहीं है। लक्ष्मण के मूच्छित हो जाने पर वह शोक-सन्तप्त मन से कह उठता है :—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ रा० ६।१०२।१२-१३॥

लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति भी आदर्श रूप में प्रस्तुत की गई है। वह राम वन-गमन का समाचार सुनकर उसके साथ चलने को तय्यार हो जाता है और उसके लिये वन में सभी प्रकार के कष्ट सहन करता है। भ्रातृजाया के प्रति उसके हृदय में समुचित स्नेह और सम्मान की भावना है। कुछ क्रोधी स्वभाव का होते हुए भी वह राम के स्वर्णमृग के पीछे चले जाने पर सीता से अधिक्षिप्त होने पर तनिक भी विचलित नहीं होता। 'मातृवत् परदारेषु' की भावना उसके लिए इतनी महनीय है कि वह राम सीता के गहनों को पहचानने की अनुमति पाकर केवल पांवों के गहनों को तो पहचान पाता है, पर सिर और कानों के गहनों को पहचानने में असमर्थ है :—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥ रा० ४।६।२२॥

सीता पतिव्रत-धर्म की प्रतिमूर्त्ति है। वह वन के कष्टों के अयोग्य होती हुई भी पति के साथ वन में जाने का आग्रह करती हुई कहती है :—

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥
भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥
न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नती कुशकण्टकान् ॥ रा० २।२७।३-६ ॥

अशोक-वाटिका में रावण से त्रस्त और राक्षसियों से भर्त्सित होने पर भी वह सती अपने पतिव्रत-धर्म पर अडिग रहती है। राक्षसियों द्वारा लोभ दिए जाने पर वह कहती है :—

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ रा० ५।२४।६॥

भरत की अग्रज राम के प्रति सम्मान की भावना भी अद्वितीय है। वह राज्य को ठोकर मारकर राम को वापस अयोध्या लौटाने के लिए जाता है, और उसके वापस न आने पर उसके पादत्राणों को सिंहासन पर रखकर स्वयं नन्दिग्राम

में निवास करता हुआ उसके प्रतिनिधि के रूप में राज्य के कामकाज की देखभाल करता है। हनुमान् का चरित्र स्वामि-भक्ति का अनुपम उदाहरण है। वह अपने स्वामी के आज्ञापालन के लिये अपनी जान को भी जोखिम में डाल देता है। उसे जहाँ एक ओर वेदविद् और व्याकरण का ज्ञाता बताया गया है, वहाँ दूसरी ओर उसके वानर स्वभाव का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। अति सुन्दर नगरों और भव्य प्रसादों में निवास करने वाले सुसभ्य और सुसंस्कृत सुग्रीव, वाली, अंगद आदि वानर जाति के अन्य पात्रों का चित्रण भी इसी प्रकार हुआ है। राक्षसों के चरित्र-चित्रण में उन्हें मायिक और अतिमानवीय शक्तियों से युक्त तथा यज्ञविध्वंसक और नर-भक्षी दिखाया गया है। रावण के कहीं कहीं दस सिर और बीस हाथ बताए गए हैं। मारीच कामरूप है और इच्छानुसार स्वर्ण-मृग का रूप धारण कर लेता है।

(६) **भाषा :** रामायण की भाषा जीती जागती और लोकव्यवहार की भाषा है। कृत्रिमता और प्रयाससाध्यता की इसमें गन्ध तक भी नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि के काल में भाषा के लिए व्याकरण के नियम इतने कठोर और संकुचित नहीं हुए थे जितने कि उसके उत्तरवर्ती पाणिनि के काल में तथा उसके पश्चात् हो गए। यही कारण है कि रामायण में असंख्य ऐसे भाषायी प्रयोग हैं जो पाणिनि के व्याकरण के नियमों के अनुकूल नहीं हैं। रामायण के अपाणिनीय प्रयोगों का कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है :—दो पादों के बीच में सन्धि का अभाव, यथा— अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम्; तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम्; वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत्; संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम्। कहीं कहीं एक ही पाद में संध्यभाव देखा जाता है, जैसे— रावणस्तत्र आगतः; स विहाय इमं लोकम्; अनाथा इव दृश्यते; अपायं वा उपायं वा। कहीं कहीं दोहरी सन्धि देखी जाती है, यथा—तपोमूर्ति तपात्मकम्; एषैव चान्ये च; लक्ष्मणस्तु ततोवाच। शब्दरूपों में अपाणिनीय प्रयोग पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, यथा विमना मयूराः, पुरुरवस्, विरजे वस्त्रे, अप्सराणाम्, तिग्मतेजौ, पक्षिम्, वालिम् आदि। समासों में भी अनेक अपाणिनीय प्रयोग देखने को मिलते हैं, जैसे—जनकस्त्वां महाराजा; बद्ध्वा राक्षसराजानम्। संख्याओं में त्रिंशतम् (द्वि० ए०) के स्थान पर त्रिंशतिम्; षोडश और द्वादश के स्थान पर षोडशम और द्वादशम रूप उपलब्ध हैं। अनियमित तद्धितों के कुछ उदाहरण हैं— जामदग्नेय, दाशरथ, केकयी और कैकयी। स्त्री-रूपों में शुद्ध रूप शूर्पणखा के साथ शूर्पनखी और शूर्पणखी रूप भी मिलते हैं; परकीयासु के स्थान पर परक्यासु और स्वसारम् के स्थान पर स्वस्राम् का प्रयोग हुआ है। परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद और आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है। उदाहरण के लिए सह्, वृध्, लभ्, रभ् आदि आत्मनेपदी धातुओं का प्रयोग परस्मैपद में उपलब्ध है। इसी प्रकार असंख्य परस्मैपदी धातुओं का प्रयोग आत्मनेपद में

देखा जाता है, जैसे-- वृष्, वद्, पत्, स्पृश्, नृत्, वस्, भू, विश् आदि। गण-व्यत्यय भी बहुत अधिक देखने को मिलता है, यथा—आस्, शी, सृज्, हन् और शास् (सभी अदादि०), धा (जुहोत्यादि), हिंस् और रुध् (रुधादि०), मृद्, बन्ध् और स्तम्भ् (क्र्यादि०) का प्रयोग भ्वादिगण के शप् विकरण के साथ हुआ है। कहीं पाणिनि के नियमों के विरुद्ध इडागम और इडभाव देखने को मिलता है। सान्त्वयत्, मन्त्रयन्; अभिपूजयन् आदि पदों में अडभाव और उदीरयन् आदि पदों में आडभाव उल्लेखनीय हैं। परन्तु कहीं कहीं जहाँ मा के योग में अट् का लोप अपेक्षित था वहाँ लोप नहीं किया गया, जैसे—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः, मा वालिपथमन्वगाः आदि। अनेक स्थानों पर शतृ के स्थान पर शानच् और शानच् के स्थान पर शतृ का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं शानजन्त रूपों में मुगागम का अभाव है, जैसे—कामयान, शोभयान, लोभयान आदि। कहीं कहीं शत्रन्त से स्त्रीरूपों में नुमाभाव है, जैसे—गच्छती, जीवतीम्, तर्जती, परिसर्पती आदि। कहीं कहीं नियमविरुद्ध नुम् का आगम किया गया है, जैसे रुदन्ती, प्रतिगृह्णन्तीम्, ब्रुवन्ती आदि। कहीं कहीं धातु से पूर्व उपसर्ग न आने पर भी क्त्वा के स्थान पर ल्यप् मिलता है जैसे गृह्य, उष्य, पूज्य आदि। इसके विपरीत उपसर्ग आने पर भी ल्यप् न होकर क्त्वा का ही प्रयोग भी मिलता है, जैसे उपासित्वा, संत्यक्त्वा, आदि। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की अनियमितताएं हैं।

इन तथाकथित अनियमितताओं से रामायण की भाषा का सौन्दर्य कम नहीं हुआ, प्रत्युत बढ़ा ही है। जीती जागती बोलचाल की भाषा में ऐसी कुछ स्वतन्त्रता अपेक्षित भी है। रामायण की भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि वह सरल, सरस और प्रसादगुणोपेत है। वाल्मीकि की भाषा-भामिनी अपने स्वाभाविक विलासों के द्वारा सहृदयों के मन को आकृष्ट करने में पूर्णरूपेण समर्थ है। विलासवती नायिका के समान वह सर्वत्र मन्दस्मित सा करती हुई सुशोभित हो रही है। वह उत्कृष्ट है, अलंकृत और सुसंस्कृत है, तथा काव्य-गौरव से परिपूर्ण है। भाषा की ऐसी सरलता, सरसता और प्रसादगुणोपेतता संस्कृत साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

उपसंहार : रामायण एक उच्चकोटि का काव्य है जो छन्द, अलंकार, रस-परिपाक, प्रकृतिवर्णन, भाषाशैली, चरित्र-चित्रण आदि सभी दृष्टियों से अनुपम है। इस काव्यरत्न का समस्त संस्कृत-साहित्य परम्परा में अपना एक विशिष्ट स्थान है।

सुन्दरकाण्ड का नामकरण

रामायण के सभी काण्डों के नाम अन्वर्थक हैं, इसमें कोई मतभेद नहीं है। बालकाण्ड में राम के जन्म और बाल-लीला का वर्णन है, अयोध्याकाण्ड में राम के

जीवन में अयोध्या नगरी में घटी घटनाओं यथा राज्याभिषेक की तय्यारी, वन-गमन के निश्चय आदि का वर्णन हुआ है। अरण्य-काण्ड में राम के वनवास और सीताहरण आदि का सुन्दर वर्णन है। किष्किन्धाकाण्ड में किष्किन्धा में निवास करने वाले, पत्नीविहीन, भ्राता लक्ष्मण के साथ सीता का अन्वेषण करते हुए राम का जीवन उपन्यस्त हुआ है। युद्धकाण्ड में रणबांकुरे राम के युद्धताण्डव का मनोरम वर्णन हुआ है। इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड का नाम भी किसी विशेष सौन्दर्य के कारण पड़ा है। पर वह सौन्दर्य कौन सा है इस विषय में विद्वानों में अनेक मत प्रचलित हैं। ये मत संक्षेप में नीचे दिए जाते हैं :—

(१) कुछ विद्वानों का कथन है कि गुमी हुई वस्तु की प्राप्ति को ही सुन्दर कहा जाता है (नष्टद्रव्यस्य लाभो हि सुन्दरः परिकीर्तितः)। इस उक्ति के अनुसार इस काण्ड में रावण द्वारा अपहृत सीता और हनुमान् द्वारा उसे खोजकर प्राप्त कर लेने का वर्णन है। इसलिए इसे सुन्दर कहना उचित ही है।

(२) कुछ विद्वानों का मत है कि सुन्दर शब्द वानर का पर्याय है। चूंकि इस कांण्ड में वानरशिरोमणि हनुमान् के यशोवर्णन का प्राधान्य है, अतः इसे सुन्दरकाण्ड कहा जाता है।

(३) किन्हीं का मत है कि इस काण्ड में श्रीराम, सीता और सभी वानर मनोव्यथा से मुक्त होकर सुखातिशय को प्राप्त हुए हैं, अतः इस काण्ड के सुन्दर-काण्ड इस नामकरण का यही बीज है।

(४) कुछ के अनुसार सुन्दर शब्द मङ्गलार्थक है। इस काण्ड में मङ्गल-देवता, महालक्ष्मी सीता के शील, स्वभाव और वृत्त का विशेष रूप से वर्णन हुआ है अतः इस काण्ड के नामकरण का यही कारण है।

(५) इस काण्ड के ३५वें सर्ग में विग्रहवान्-सौन्दर्य श्री राम के अनुपम सौन्दर्य और शुभलक्षणों से युक्त सभी अङ्गों का सुन्दर वर्णन हनुमान् के द्वारा हुआ है, अतः इसे सुन्दर-काण्ड कहा जाता है।

(६) दाक्षिणात्यों के अनुसार चूंकि राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान् तथा अन्य देवताओं की स्तुति से युक्त सुन्दर मन्त्र

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥५।१३।६०॥

का निरूपण इस काण्ड में हुआ है, इसलिये इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड है।

(७) कुछ का मत है कि इस काण्ड में सकल वर्णन ही अत्यन्त सुन्दर है। अतः काव्य-सौन्दर्य की विशेषता के कारण इस काण्ड का नामकरण सुन्दर-काण्ड

हुआ है। तिलक-टीकाकार ने इस सुन्दरकाण्ड की सुन्दरता का निरूपण बड़े सुन्दर ढंग से किया है। वह लिखता है—

सुन्दरे सुन्दरी लङ्का सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किं न सुन्दरम् ॥

सुन्दरे सुन्दरीं सीतामक्षतां मारुतेर्मुखात्।
श्रुत्वा हृष्टस्तथैवास्तु स रामः सततं हृदि ॥

(८) एक अन्य मत उन विद्वानों का है जो वर्तमान श्रीलङ्का (सिंहल-Ceylon) को रावण की लंका नहीं मानते। उनके मतानुसार लङ्का का सामान्य अर्थ 'द्वीप' है और किसी भी द्वीप को लङ्का कहा जा सकता है। सिल्वेन लेवी का कथन है कि यह शब्द तिब्बती गिलन् और क प्रत्यय से मिलकर बना है और इसका अर्थ 'नदी का अकृषित टापू' है। लेपखा में भी ल्यङ्-क शब्द का अर्थ 'निर्जन प्रदेश' है। यूले और बर्नेल ने इसका अर्थ सामान्य रूप से 'Island (द्वीप)' दिया है। उन द्वारा यह शब्द ब्राउन के तेलगु-शब्दकोश से लिया प्रतीत होता है। उन्होंने लंका का एक अन्य अर्थ भी दिया है 'मद्रास प्रेसीडेंसी में बहुत प्रसिद्ध एक प्रकार का चुरट जो गोदावरी-डेल्टा की लङ्काओं अर्थात् द्वीपों में उत्पन्न होता है।' 'गज़ेटियर आफ़ इंडिया' में गोदावरी शब्द के अन्तर्गत इस तथ्य की इस प्रकार पुष्टि की गई है "वह भूमि जिस पर प्रायः तम्बाकू उगता है, लंका नाम से पुकारे जाने वाले गोदावरी के द्वीपों की है। इन द्वीपों में प्रतिवर्ष बाढ़ आती है......तम्बाकू इन लङ्काओं के सभी भागों में अनपेक्षित रूप से उत्पन्न होता है। योरुप की मंडियों में लंकाओं के इस तम्बाकू के बढ़िया दाम मिलते हैं।" इससे प्रतीत होता है कि रावण की लङ्का गोदावरी-डेल्टा का कोई द्वीप हो सकता है, जिसका वास्तविक नाम सुन्दर रहा होगा, और उसी के नाम पर इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड रखा गया होगा। रामायण के काण्डों के नाम प्रायः स्थानों के नामों पर रखे गए हैं—यथा अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि वह लङ्का 'द्वीप' जिसमें रावण की राजधानी थी, गोदावरी नदी के सुन्दर नामक किसी टापू में स्थित हो और उसी के नाम पर इस काण्ड का नाम सुन्दर काण्ड रखा गया हो।

अन्तिम मत को छोड़कर शेष सभी के अनुसार सुन्दरकाण्ड का नामकरण किसी न किसी प्रकार के सौन्दर्य के कारण हुआ है। यद्यपि विग्रहवान् धर्म मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की तरह उसका चरित अथवा वाङ्मय शरीर यह वाल्मीकीय रामायण सम्पूर्ण का सम्पूर्ण ही स्वभावतः निर्दोष, अशेष कल्याणों और गुणों का आकर, पुरुषार्थचतुष्टय का साधक, तथा स्वाध्याय और श्रवण में भी मनोहारी है, और उस मुनि के द्वारा स्वयं घोषणा भी की गई है :—

कामार्थगुणसंयुक्तं धर्मार्थगुणविस्तरम् ।
समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुतिमनोहरम् ॥ रा० १।३।८॥

तथापि काव्यसौन्दर्य, अलंकारयोजना, प्रकृतिवर्णन, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से सुन्दरकाण्ड समस्त वाल्मीकीय रामायण में उत्तम है। जिस प्रकार अक्षरों में अकार, छन्दों में गायत्री, इन्द्रियों में मन, मन में अन्तरात्मा, अङ्गों में मुख, नदियों में गङ्गा, श्रुतियों में साम, सहस्रनामों में राम नाम, सतियों में सीता, महाभारत में गीता, मुनियों में व्यासदेव और वृष्णियों में वासुदेव का मुख्य स्थान है उसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण के सभी काण्डों में दिव्यशक्तिसम्पन्न और परमसौन्दर्य से युक्त अन्वर्थनामा यह सुन्दरकाण्ड सबसे अधिक सुन्दर और श्रेयस्कर है। यही कारण है कि नष्ट हुए धन की प्राप्ति के लिए, विजय की उपलब्धि के लिए, मङ्गल-लाभ के लिए, भगवद्भक्ति के भाव की अभिवृद्धि के लिए, भगवद्-दर्शन के लिए, हनुमान् के प्रसाद के लिए, समस्त सुन्दर और मनोरम फलों की प्राप्ति के लिए भक्तजनों में सुन्दरकाण्ड के पाठ के अनुष्ठान की प्राचीन परम्परागत विधि प्रचलित है। वीतराग, कामक्रोधवर्जित, अध्यात्मतत्त्वचिन्तक साधकों के लिए भी लक्ष्यसिद्धि के लिए सुन्दरकाण्ड के पाठ का विधान किया गया है। गोविन्दराज ने सुन्दरकाण्ड की टीका के प्रारम्भ में ही इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं—रुलाने वाला अर्थात् असत् प्रलाप कराने वाला रावण अविवेक है, सीता अध्यात्म-विद्या है, हनुमान् द्वारा किया गया उसका अनुसन्धान उसकी प्राप्ति का साधन है, उसका दर्शन ही विद्या की उपलब्धि है, वह ही सिद्धि है, उससे ही जीव की कृत-कृत्यता है। इसके अतिरिक्त श्राद्ध और यज्ञ में भी सुन्दरकाण्ड का पाठ मङ्गलकर बताया गया है। बृहद्धर्मपुराण में कहा गया है—

श्राद्धेषु देवकार्येषु पठेत् सुन्दरकाण्डम् । पूर्वखण्ड २६।११॥

सर्गाणां सारः

पञ्चदशः सर्गः—शिंशिपावृक्षे स्थितः स हनुमान् सर्वां महीम् अवेक्षमाणः सीतां मार्गते स्म । तत्रस्थ एव स पुष्पफलोपेतैर् विविधैर् वृक्षैर् उपशोभिताम् अशोकवाटिकाम् अपश्यत् । तस्या अशोकवनिकाया मध्ये स वानरपुङ्गवः स्तम्भसहस्रेण स्थितम्, कैलास-पाण्डुरम्, प्रवालकृतसोपानम्, तप्तकाञ्चनवेदिकम्, भव्यम् एकं चैत्यप्रासादम् ददर्श । ततः स हनुमान् मलिनवस्त्राम्, राक्षसीभिः समावृताम्, उपवासकृशाम्, दीनाम्, अन-लङ्कृताम्, अश्रुपूर्णमुखीम्, दुःखसन्तप्तां सीताम् अपश्यत् । अधिकं मलिनां कृशां तां विशालाक्षीं विलोक्य उपपादिभिः कारणैः स तर्कयामास, इयं सीतेति । कामरूपिणा रक्षसा तेन रावणेन ह्रियमाणा यथारूपा वानरैस्तदा दृष्टा आसीत् तथारूपैव इयम् अङ्गना अस्ति । व्रतोपेतां तापसीम् इव भूमाव् आसीनाम्, सर्पिणीमिव निःश्वसन्तीम्, रामोपरोधव्यथिताम्, रक्षोगणनिपीडिताम्, अनभ्यासेन विस्मृतां विद्याम् इव च तां

सीतां तथा निरीक्ष्य तस्य मनसि सन्देहो जातः। संस्कारेण हीनाम् अतएव अर्थान्तरं गतां वाचम् इव अनलंकृतां तां सीतां स हनुमान् दुःखेन बुबुधे। तस्या अङ्गेषु यानि आभरणानि रामस्तदा अन्वकीर्तयत् तान्येव गात्रशोभीनि भूषणानि सोऽलक्षयत् अचिन्तयच् च—कुण्डले, त्रिकर्णाख्ये भूषणे, अन्यानि चेमानि भूषणानि तान्येव। चिरं धारणाद् इदं वस्त्रं क्लिष्टवत्तरं सञ्जातम्। तथापि इदम् अनूनं तद्वर्णम् एव च। इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य प्रिया भार्या सीतैव या प्रनष्टाऽपि तस्य मनसो न प्रणश्यति। इयमेव सा सीता यस्याः कृते रामः कारुण्येन, आनृशंस्येन, शोकेन, मदनेन चेति चतुर्भिः संतप्यते। यादृशम् अस्या अङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवं तादृशम् एव तस्यापि। अस्या मनः तस्मिन् प्रतिष्ठितं तस्य चास्याम्। अत इयम् असितेक्षणा तस्यैव। प्रभू रामो दुष्करं करोति यद् अनया हीनो जीवितं धारयति, शोकेन च नावसीदति इति सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टो हनुमान् मनसा प्रभुं रामं जगाम तं प्रशशंस च।

षोडशः सर्गः—सीतां प्रशस्य रामं च प्रशस्य हनुमान् पुनः चिन्तापरोऽभवत्। स मुहूर्तं ध्यात्वा सीताम् आश्रित्य विललाप। रामस्य भार्या सीता अपि यदि दुःखार्ता तर्हि कालो हि दुरतिक्रमः। अस्या विशालाक्ष्या हेतोर् महाबलो वाली हतः, कबन्धो निपातितः, विराधश्च धराम् अधिशेते। जनस्थाने चतुर्दश सहस्राणि भीमविक्रमाणि रक्षांसि निहतानि। खरश्च त्रिशिराश्च दूषणश्च युद्धे निपातिताः। अस्या एव निमित्ते सुग्रीवो वानराणां स्वामित्वं प्राप्तवान्, अस्या एव हेतोर् मया सागर आक्रान्त इयं पुरी लङ्का च निरीक्षिता। अस्याः कृते यदि रामः सागरपर्यन्तां मेदिनीं जगच्चापि परिवर्तयेत् तदपि युक्तम् एवेति मे मतिः। त्रैलोक्यराज्यं सीतायाः कलाम् अपि नाप्नोति। महात्मनो जनकस्य सुता, आर्यशीलस्य दशरथस्य ज्येष्ठा स्नुषा, विदितात्मनो रामस्य प्रिया भार्येयं सीता राक्षसीवशम् आगता। भर्त्रा सह वनं प्रविष्टा पतिव्रतेयं सीता आरण्यकानि कष्टानि अपि न गणयति। रावणेन रुद्धाम् इमां तु रामः पिपासितः प्रपाम् इव द्रष्टुम् इच्छति। इयमपि तत्समागमकाङ्क्षिणी प्राणान् धारयति। किञ्चिदपि अनवलोकयन् राममेव केवलम् अनुपश्यति। भर्ता नाम नार्या भूषणाद् अपि परं शोभनम्, शोभनार्हापि तेन रहिता एषा न शोभते। राक्षसीवशं गतेयं सीता अधुना कृपणां दशां प्रपन्ना। शीतरश्मिश्च अशोकाश्च सम्प्रति अस्याः शोकमेव जनयन्ति, इत्येवम् अर्थम् अन्ववेक्ष्य सीतेयम् इत्येव जातबुद्धिः स हनुमान् वृक्षे संश्रित्य निषसाद।

सप्तदशः सर्गः—ततः आकाशमध्यगतः चन्द्रः शीतैं रश्मिभिर् हनुमन्तं सिषेवे। तदनन्तरं स पूर्णचन्द्रनिभाननां परं शोकभारैर्न्यस्तां सीतां ददर्श। घोरदर्शना राक्षसीश्चापि हनुमान् ददर्श। तासां काचिद् एकाक्षी काचिद् एककर्णा काचित् कर्णप्रावरणा, काचिद् अकेशी काचित् केशकम्बलधारिणी काचिल् लम्बोदरपयोधरा, काचिद् ध्रस्वा काचिद् दीर्घा चासीत्। एवं स अनेका विकृताकृतीर् घोरदर्शनाः क्रोधनाः कलहप्रियाश्च राक्षसीस्तत्र ददर्श। सुरामांसप्रियास्ताः स्कन्धवन्तं तं वनस्पतिं परिवार्य उपासीना

आसन् । तस्य अधस्ताच्च असौ ताभिः परिवृतां तां सीतां भूमौ च्युतां ताराम् इव ददर्श । उत्तमैर्भूषणैर् हीना, बन्धुभिर्विनाकृता राक्षसीवशंगता, शोकसागरपरिप्लुता, मलेन दिग्धाङ्गी च सा सीता पङ्कदिग्धा मृणालीव विभाति च न भाति च । मृगशावनिभेक्षणां सुविभक्ताङ्गीं परं क्षामां तां मैथिलीं प्रेक्ष्य हनुमान् अतुलं प्रहर्षं लेभे । मदिरेक्षणां तां दृष्ट्वा स हर्षजानि अश्रूणि मुमोच । तदा रामाय लक्ष्मणाय च नमस्कृत्य वीर्यवान् स मारुतिः शिंशिपावृक्षस्य शाखासु निगूढः तस्थौ ।

अष्टादशः सर्गः—पुष्पितपादपं वनं तथा विप्रेक्षमाणस्य वैदेहीं विचिन्वतश्च तस्य हनुमतो निशा किञ्चिच्छेषाऽभवत् । तस्मिन् ब्राह्मे मुहूर्ते स ब्रह्मरक्षसां ब्रह्मघोषान् अशृणोत् । महाबलो रावणो मङ्गलवादित्रैः श्रोत्रमनोहरैः शब्दैश्च प्राबोध्यत । विबुध्य रावणः सीतामेवाचिन्तयत् । कामपीडितोऽसौ रावणः सर्वाभरणैर्युक्तः सर्वविधशोभासंपन्नां ताम् अशोकवाटिकामेव प्रतस्थौ । शतम् अङ्गना व्रजन्तं तम् अन्वव्रजन् । तासां काचिद् वालव्यजनहस्ता, काचिन् मङ्गलजलकलशं शिरसा वहन्ती, अपरा वृसीहस्ता, अन्या पानपूर्णां पात्रीं गृह्णाना, इतरा सौवर्णदण्डं छत्रं हस्तेन धारयन्ती यान्तं तं पृष्ठतो ययौ । ततो मारुतनन्दनः कपिः वरस्त्रीणां काञ्चीनिनादं नूपुराणां निःस्वनं च शुश्राव । अप्रतिमकर्माणम् अचिन्त्यबलपौरुषं च तं रावणं द्वारदेशम् अनुप्राप्तं ददर्श । अनेकाभिर् दीपिकाभिरवभासितं कामदर्पमदैर्युक्तं समीपमागतं तं रावणं पत्रविटपे लीनो हनुमान् विज्ञातुम् उपचक्रमे । स तदा अशोकवाटिकां प्रविशन्तं तं रावणं रूपयौवनसम्पन्नास्तस्य वरस्त्रियश्च ददर्श । दृष्ट्वा सोऽचिन्तयत्—अयमेव स रावणो यः पुरा गृहोत्तमे शेत इति । इति संचिन्त्य महातेजा हनुमान् अवप्लुतः । उग्रतेजा अपि स हनुमान् तस्य रावणस्य तेजसा निर्धूतः शिंशिपावृक्षे निलीनोऽभवत् । सीतां दिदृक्षू रावणः सुश्रोणीं संहतस्तनीम् असितापाङ्गीं तामेव उपागच्छत् ।

एकोनविंशः सर्गः—तस्मिन् काले पतिव्रता सीता राक्षसाधिपं रावणं दृष्ट्वा प्रवाते कदलीव प्रावेपत । रुदती सा वरवर्णिनी ऊरुभ्याम् उदरं बाहुभ्यां पयोधरौ चाच्छाद्य उपविष्टा । रावणस्तु राक्षसीभिरभिरक्षिताम्, असंवृतायां धरण्याम् आसीनाम्, दीनाम्, दुःखार्तां परं संशितव्रतां सीतां ददर्श । पङ्कदिग्धा मृणालीव सा विभाति न विभाति च । रामम् अनुस्मरन्तीम्, ध्यानशोकपरायणाम्, दुःखस्यान्तमपश्यन्तीम्, आचारवति धार्मिके वृत्तशीले कुले जाताम्, संस्कारमापन्नाम् परं दुष्कुले पुनर्जातामिव, सन्नां महाकीर्तिमिव विमानितां श्रद्धाम् इव, परिक्षीणां प्रज्ञाम् इव, विध्वस्ताम् आयतीम् इव, प्रतिहताम् आज्ञाम् इव, अपहतां पूजाम् इव, हतशूरां सेनाम् इव, तमोध्वस्तां प्रभाम् इव, परामृष्टां वेदीम् इव, शान्ताम् अग्निशिखाम् इव, एकया दीर्घया वेण्याऽयत्नतः शोभमानाम्, उपवासेन शोकेन ध्यानेन भयेन च परिक्षीणां कृशां दीनां अल्पाहारां च सीतां रावणः स्ववधाय प्रलोभयामास ।

विंशः सर्गः—दीनां तां सीतां स रावणः साभिप्रायवचनैः संबोधयामास। सुन्दरि! त्वं मां दृष्ट्वा स्तनोदरं गूहमाना आत्मानम् अदर्शनम् इव नेतुम् इच्छसि। प्रिये! अहं त्वां कामये, त्वं मां बहु मन्यस्व। परस्त्रीगमनं बलाद् अपहरणं वा राक्षसानां स्वधर्मः, नात्र संशयः, परम् अहम् अकामां त्वां न स्प्रक्ष्यामि, कामं कामो मे शरीरे यथाकामं प्रवर्तताम्। देवि! मा भैषीः, मयि विश्वसिहि। एकवेणी, अधःशय्या, ध्यानम्, मलिनम् अम्बरम्, अस्थाने उपवासश्च, एतानि ते युक्तानि न! मैथिलि! विविधानि वस्त्राणि, दिव्यान्याभरणानि, अन्यानि च भोगजातानि मां प्राप्य लभस्व। स्त्रीरत्नम् असि, ईदृगवस्था मा भूः। इदं ते चारुसजातं यौवनम् अतिवर्तते। मन्ये रूपकर्ता स ब्रह्मा त्वां कृत्वोपरतः, अत एव अन्या तव रूपोपमा नास्ति। सीते! रुपयौवनसंपन्नां त्वां दृष्ट्वा स्वयं ब्रह्मापि कामवशगः स्यात्, अन्यस्य तु का कथा। यद् यत् ते गात्रमहं पश्यामि तस्मिन् तस्मिश्चक्षुर्मे निबध्यते। मैथिलि! एतं मोहं विसर्जय, भार्या च मे भव। त्वं मम स्त्रीणाम् अग्रमहिषी भविष्यसि। अहं सर्वां पृथिवीं विजित्य तव पित्रे दास्यामि। अस्मिन् लोके मम कोऽपि प्रतिद्वन्द्वी नास्ति। सुभगे! चीरवासिना रामेण किं करिष्यसि। शङ्के वनगोचरोऽसौ जीवति वा न वा। स त्वां द्रष्टुमपि नोपलप्स्यते। मनोहरे। त्वां दृष्ट्वाऽहं स्वदारेष्वपि रतिं नोपलभे। त्वं सर्वासां मम स्त्रीणाम् ऐश्वर्यं कुरु। सर्वान् भोगान् मया सह यथासुखं भुङ्क्ष्व। ललने! मयि यथेच्छं ललस्व, त्वयि च समेत्य ते बान्धवा अपि ललन्तु। भीरु! मया सह समुद्रतीरजानि काननानि विहर।

एकविंशः सर्गः— ततः रौद्रस्य रक्षसः तद् वचनं श्रुत्वा आर्ता दीनस्वरा सीता तृणम् अन्तरतः कृत्वा शनैः दीनं प्रत्युवाच। मत्तो मनो निवर्तय, स्वदारेषु प्रीतिः क्रियताम्। पापकृत् सिद्धिमिव त्वं मां प्रार्थयितुं न युक्तः। महति कुले जाता पुण्यं कुलं प्राप्ता एकपत्नी चाहं त्रिगर्हितमिदमकार्यं न करिष्यामि सती परभार्याऽहं तवौपयिकी भार्या न। धर्मं साधु अवेक्ष्य साधुव्रतं चर। आत्मवत् परस्त्रियः त्वया रक्ष्याः। इह लङ्कायां सन्तो वा न सन्ति, त्वं वा सतो नानुवर्तसे, यथा हि ते बुद्धिः विपरीता आचारवर्जिता च। अनये रतं त्वादृशं राजानं प्राप्य समृद्धानि राष्ट्राणि नगराणि च विनश्यन्ति। नूनम् एकस्य तवापराधाद् रत्नौघसङ्कुलेयं लङ्का नचिराद् विनङ्क्ष्यति। स्वकृतैः हन्यमानस्य पापकर्मणो विनाशे प्राणिनोऽभिनन्दन्ति। राघवेणानन्याहम् ऐश्वर्येण धनेन वा लोभयितुं न शक्या। रामस्य सत्कृतं भुजम् उपधायाऽन्यस्य कस्यचिद् भुजं कथं नाम उपधास्यामि। व्रतस्नातस्य विदितात्मनो विप्रस्य विद्येवाहं तस्यैव धरापतेरौपयिकी भार्या। त्वं दुःखितां मां तेन रामेण समानय। शरणागतवत्सलोऽसौ रामस्त्वया मित्रं कर्तुमौपयिकम्। एवं मां रघूत्तमाय संप्रदाय हि ते स्वस्ति भवेत्। अन्यथा कुर्वाणश्च त्वं परामापदं प्राप्स्यसि। उत्सृष्टं वज्रं वर्जयेत्, अन्तकश्चिरं वर्जयेत् परं संक्रुद्धो लोकनाथोऽसौ राघवस्तु त्वद्विधं कदापि न वर्जयेत्।

इह लङ्कायां रामलक्ष्मणनामाङ्किता इषवः शीघ्रं निपतिष्यन्ति, अरिन्दमः स भर्ता च मां त्वत्तः शीघ्रम् अपनेष्यति । कुबेरस्यालयं गतो वरुणस्य सभां वा गतोऽपि त्वं प्राणान् रक्षितुं न शक्ष्यसि ।

द्वाविंशः सर्गः—ततः सीतायाः परुषं वचनं श्रुत्वा रावणः प्रियदर्शनां विप्रियं प्रत्युवाच । सान्त्वयिता यथा यथा सान्त्वयति तथा तथा स्त्रीणां प्रियो भवति, परमहं यथा यथा प्रियम् उक्तवान् तथा तथा त्वया परिभूतः । काम एव मम क्रोधं संनियच्छति । अस्माद् कारणादेव वधार्हामपि त्वां न हन्मि । कृतं समयं विचार्य द्वौ मासौ मे रक्षितव्यौ, ततस्त्वं मम शयनम् आरोह, अन्यथा सूदास्त्वां मम प्रातराशार्थे खण्डशः छेत्स्यन्ति । रावणेन भर्त्स्यमानां सीतां दृष्ट्वा देवगन्धर्वकन्यास्ताम् इङ्गितैर् आश्वासयामासुः । ताभिः समाश्वासिता सीता रावणं हितं वाक्यम् उवाच—ननं कश्चिदपि जनस्ते हिते न तिष्ठति यस्त्वाम् अस्माद् दुष्कर्मणो न निवारयति । पाप ! अमिततेजसो रामस्य भार्यां यत् पापम् उक्तवानसि तस्य न क्वापि गतो मोक्ष्यसे । शशवन् नीचस्त्वं यावद् द्विरदस्य तस्य रामस्य चक्षुर्विषयं न गच्छसि तावदेव तं क्षिपन् न लज्जसे । धर्मात्मनो रामस्य पत्नीं दशरथस्य च स्नुषां दुर्वचो व्याहरतस्ते जिह्वा कथं न शीर्यति । रामस्यासंदेशात् तपसश्चानुपालनाद् वधार्हमपि त्वां स्व-तेजसा भस्म न करोमि । अहं त्वयापहर्तुं शक्या नासम्, असन्दिग्धम् अयं तु तव वधाय विधिः विहितः । सीताया वचनं श्रुत्वा रावणः क्रूरे नयने विवृत्य ताम-पश्यत् । भूषितोऽपि भयङ्करोऽसौ रावणो भुजङ्ग इव निःश्वसन् सीतां प्रत्युवाच । अनयसम्पन्नम् अर्थहीनं च रामम् अनुव्रते ! अद्याहं त्वां न नाशयामि । इत्युक्त्वा रावणो घोरदर्शना विकृताङ्गीश्च सर्वा राक्षसीर् आदिदेश—राक्षस्यः ! सर्वाः समेत्य क्षिप्रं तथा कुरुत यथा सीता मम वशे भवति । सामदानभेददण्डाद्युपायैर्वैदेहीम् आवर्जयत । तदा धान्यमालिनी नाम राक्षसी रावणमिदं वचनमब्रवीत्—राक्षसेश्वर! मया क्रीड, तवानया मानुष्या किम् । नूनं देवाः नव भोगान् अस्यां न विदधति । एवमुक्तस्तु स राक्षसः प्रहसन् न्यवर्तत ।

त्रयोविंशः सर्गः—राक्षसेन्द्रे निर्गम्य पुनर् अन्तःपुरं प्रविष्टे भीमरूपास्ता राक्षस्यः सीताम् अभिदद्रवुः, सक्रोधम् इदम् ऊचुश्च—सीते ! मोहात् त्वं रावणस्य भार्यात्वं बहु न मन्यसे । क्रोधताम्राक्षी एकजटा नाम राक्षसी कृशां सीतां वचनम् अब्रवीत्—अयं पुलस्त्यो ब्रह्मणो मानसः पुत्रः षण्णां प्रजापतीनां चतुर्थः प्रजापतिश्च, तस्य मानसः सुतो महर्षिर् विश्रवाः, तस्य पुत्रश्चायं रावणः । तस्य राक्षसेन्द्रस्य त्वं भार्या भवितुम् अर्हसि । ततो हरिजटा नाम राक्षसी कोपान् नयने विवृत्य वाक्यम् अब्रवीत्—येन त्रयस्त्रिंशद् देवा देवराजश्च निर्जितः, तस्य राक्षसेन्द्रस्य त्वं भार्या भवितुमर्हसि । अन्या प्रियां बहुमतां मन्दोदरीमपि त्यक्त्वा महाबलो रावणस्त्वाम् उपैष्यति । अन्या विकटा नाम राक्षसी वाक्यम् अब्रवीत्—मूढे ! नागगन्धर्वदानवानाम् असकृत् जेतारं राक्षसेश्वरं किं नेच्छसि । ततो दुर्मुखी नाम राक्षसी वचनम् अब्रवीत्—यस्माद् भीतः

सूर्यो न तपति, वातो न वाति, यस्माद् भीताः तरवः पुष्पवृष्टिं मुमुचुः, जलदाश्च जलं सुस्रुवुः, भामिनि, राजराजस्य तस्य रावणस्य भार्यात्वे बुद्धिं किं न करोषि। सुस्मिते ! तत्त्वतः कथितं मे वाक्यं साधु गृहाण, अन्यथा न भविष्यसि।

चतुर्विंशः सर्गः—रावणचोदिताः सर्वास्ता राक्षस्यः सीतां रामं विस्मृत्य रावणं पतिरूपेण वरयितुं प्रेरयामासुः। पद्मपत्राक्षी सीता तासां वचांसि श्रुत्वा प्रत्युवाच— संगता यूयं लोकविद्विष्टं यद् वचनम् उदाहरत तन् मे मनसि न प्रतितिष्ठति। मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुं नार्हति कामं यूयं मां भक्षयत, अहं वो वचो न करिष्यामि। यथा महाभागा शची शक्रं समुपतिष्ठति, अरुन्धती वसिष्ठं, रोहिणी शशिनं, लोपामुद्राऽगस्त्यं च तथाहम् इक्ष्वाकुवरं रामं पतिम् अनुव्रता। सीताया वचनं श्रुत्वा कुपिता राक्षस्यः तां भर्त्सयन्ति स्म। शिंशिपावृक्षेऽवलीनो मौनी स हनुमान् सीतां तर्जयन्तीः ता राक्षसीर् अशृणोत्। राक्षसीभिः समावृता सीता शिंशिपामभिगम्य शोकपरिप्लुता तस्थौ। ततो विनता नाम भीमा राक्षसी सीताम् उवाच—सीते ! रामे स्नेहस्त्वया पर्याप्तं प्रदर्शितः। अतिकृतं सर्वत्र व्यसनाय कल्पते। अधुना हितं ब्रुवन्त्या ममापि पथ्यं वचः कुरु। मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रक्षसां भर्तारं रावणं भर्तारं भज। एतद् उक्तं च मे वाक्यं यदि न करिष्यसि मुहूर्ते वयं त्वां भक्षयिष्यामहे। अन्या लम्बमानपयोधरा विकटा नाम राक्षसी सीतामब्रवीत्—सीते रावणस्य गृहे रुद्धा त्वम् अस्मद्वचनं कुरु। सर्वरक्षसां भर्तारं रावणं भर्तारं भज, अन्यथा हृदयं ते उत्पाट्य भक्षयिष्यामि। चण्डोदरी नाम राक्षसी शूलं भ्रामयन्तीदं वचनम् अब्रवीत्—इमां दृष्ट्वा महान् अयं मे दौर्हृदः—यकृत्, प्लीहं, सर्वाणि गात्राणि चापि अस्याः खादेयम्। प्रघसा नाम राक्षसी शूर्पणखा नाम च राक्षसी अब्रूताम्—इमां विशस्य विभज्य च वयं भक्षयाम, निकुम्भलां गत्वा च नृत्याम। एवं निर्भर्त्स्यमाना सीता धैर्यमुत्सृज्य रोदिति।

पञ्चविंशः सर्गः—राक्षसीनां दारुणं वचः श्रुत्वा सीता भृशं रुरोद, परमत्रस्ता च सा बाष्पगद्गदया गिरा उवाच। मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुं नार्हति, कामं सर्वा मां खादत न वो वचः करिष्यामि। भीता सा सीता अशोकस्य विपुलां शाखाम् आलम्ब्य शोकेन भग्नमानसा भर्तारं चिन्तयामास। आर्ता सा मैथिली अश्रूणि व्यमुञ्चद् विललाप च। अयं लोकप्रवादः सत्य एव यद् अकाले पुरुषस्य स्त्रिया वा मृत्युरपि दुर्लभः। अहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरर्दिता दुःखिता च रामेण हीना मुहूर्त्तमपि जीवामि। विदितात्मना तेन रामेण हीनाया मम जीवितं दुर्लभम्। न जाने देहान्तरे मया कीदृशं महापापं कृतं येन घोरं सुदारुणम् इदं महद्दुःखं प्राप्यते। महता शोकेन वृता जीवितं त्यक्तुम् इच्छामि। राक्षसीभी रक्ष्यमाणया मया रामो नासाद्यते। मानुष्यं धिगस्तु, परवश्यतां धिग् अस्तु, यत्र आत्मच्छन्देन जीवितम् अपि त्यक्तुं न शक्यम्।

सुन्दरकाण्डम्

पञ्चदशः सर्गः

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत ॥१॥
सन्तानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलङ्कृताम् ॥२॥
तां स नन्दनसंकाशां मृगपक्षिभिरावृताम् ।
हर्म्यप्रासादसम्बाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥३॥
काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥४॥

अन्वयः—तत्रस्थः सः (हनुमान्) मैथिलीं वीक्षमाणः मार्गमाणः च सर्वां महीम् अवेक्षमाणः च ताम् अन्ववैक्षत ॥१॥ सन्तानकलताभिः पादपैः च उपशोभिताम्, दिव्यगन्धरसोपेताम्, सर्वतः समलंकृताम्, नन्दनसंकाशाम्, मृगपक्षिभिर् आवृताम्, हर्म्यप्रासादसंबाधाम्, कोकिलाकुलनिःस्वनाम्, काञ्चनोत्पलपद्माभिर् वापीभिर् उपशोभिताम्, बह्वासनकुथोपेताम्, बहुभूमिगृहायुताम्, रम्यैः सर्वर्तुकुसुमैः, फलवद्भिः

अर्थः—वहाँ (शिंशिपा-वृक्ष पर) बैठे हुए वह हनुमान् जी सीता को देखते हुए और ढूँढते हुए, एवं सारी पृथिवी पर दृष्टि डालते हुए उन्हें खोजने लगे ॥१॥ संतानक लताओं और पेड़ों से सुशोभित, दिव्यगन्ध और रस से युक्त, सब ओर से समलंकृत, नन्दन वन के सादृश्य वाली, जंगली पशुओं और पक्षियों से व्याप्त, रनिवासों और राजमहलों से भरी हुई, कोकिलों के समूह से गुंजायमान, सुनहरी उत्पलों और कमलों वाली बावलियों से सुशोभित, अनेक आसनों और बिछौनों से युक्त, बहु-

---

टि०:—१. **वीक्षमाणः** इतस्ततोऽवलोकयन् 'इधर उधर देखता हुआ'। **तत्रस्थः** शिंशिपास्थः 'शिंशिपा वृक्ष पर बैठा हुआ'। **मार्गमाणः** मैथिलीमार्गणाद् हेतोः 'सीता के ढूंढने के हेतु' "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति शानच्। २. **संतानकलताभिः** संतानक-वृक्षस्य शाखाभिः, संतानक नन्दन के पांच वृक्षों में से एक है। ३. **नन्दनसंकाशाम्** नन्दनसदृशीम्। **कोकिलाकुलनिःस्वनाम्** कोकिलानां कुलं तेन निःस्वनां शब्दवतीम्। संस्कृत में प्रायः कोकिल (पुं०) का प्रयोग देखा जाता है, यहाँ कोकिला (स्त्री०) का प्रयोग हुआ है। ४. **बह्वासनकुथोपेताम्** बहुभिः आसनैः कुथैः आस्तरणैः च उपेताम् 'अनेक आसनों और बिछौनों से युक्त'। **बहुभूमिगृहायुताम्** उपर्युपरि भूमियुक्ता गृहाः बहुभूमिगृहाः 'एक के ऊपर दूसरी इस प्रकार अनेक मंजिलों से युक्त घर' तैः आयुताम् 'उनसे सब ओर से भरी हुई'। भूमिगृहाणि बिलगृहाणि इति गोविन्दराजः।

सूर्यो न तपति, वातो न वाति, यस्माद् भीताः तरवः पुष्पवृष्टिं मुमुचुः, जलदाश्च जलं सुस्रुवुः, भामिनि, राजराजस्य तस्य रावणस्य भार्यात्वे बुद्धिं किं न करोषि। सुस्मिते ! तत्त्वतः कथितं मे वाक्यं साधु गृहाण, अन्यथा न भविष्यसि।

चतुर्विंशः सर्गः—रावणचोदिताः सर्वास्ता राक्षस्यः सीतां रामं विस्मृत्य रावणं पतिरूपेण वरयितुं प्रेरयामासुः। पद्मपत्राक्षी सीता तासां वचांसि श्रुत्वा प्रत्युवाच— संगता यूयं लोकविद्विष्टं यद् वचनम् उदाहरत तन् मे मनसि न प्रतितिष्ठति। मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुं नार्हति कामं यूयं मां भक्षयत, अहं वो वचो न करिष्यामि। यथा महाभागा शची शक्रं समुपतिष्ठति, अरुन्धती वसिष्ठं, रोहिणी शशिनं, लोपामुद्राऽगस्त्यं च तथाहम् इक्ष्वाकुवरं रामं पतिम् अनुव्रता। सीताया वचनं श्रुत्वा कुपिता राक्षस्यः तां भर्त्सयन्ति स्म। शिंशिपावृक्षेऽवलीनो मौनी स हनुमान् सीतां तर्जयन्तीः ता राक्षसीर् अशृणोत्। राक्षसीभिः समावृता सीता शिंशिपामभिगम्य शोकपरिप्लुता तस्थौ। ततो विनता नाम भीमा राक्षसी सीताम् उवाच—सीते ! रामे स्नेहस्त्वया पर्याप्तं प्रदर्शितः। अतिक्रान्तं सर्वत्र व्यसनाय कल्पते। अधुना हितं ब्रुवन्त्या ममापि पथ्यं वचः कुरु। मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रक्षसां भर्तारं रावणं भर्तारं भज। एतद् उक्तं च मे वाक्यं यदि न करिष्यसि मुहूर्ते वयं त्वां भक्षयिष्यामहे। अन्या लम्बमानपयोधरा विकटा नाम राक्षसी सीतामब्रवीत्—सीते रावणस्य गृहे रुद्धा त्वम् अस्मद्वचनं कुरु। सर्वरक्षसां भर्तारं रावणं भर्तारं भज, अन्यथा हृदयं ते उत्पाट्य भक्षयिष्यामि। चण्डोदरी नाम राक्षसी शूलं भ्रामयन्तीदं वचनम् अब्रवीत्—इमां दृष्ट्वा महान् अयं मे दौर्हृदः—यकृत्, प्लीहं, सर्वाणि गात्राणि चापि अस्याः खादेयम्। प्रघसा नाम राक्षसी शूर्पणखा नाम च राक्षसी अब्रूताम्—इमां विशस्य विभज्य च वयं भक्षयाम, निकुम्भलां गत्वा च नृत्याम। एवं निर्भर्त्स्यमाना सीता धैर्यमुत्सृज्य रोदिति।

पञ्चविंशः सर्गः—राक्षसीनां दारुणं वचः श्रुत्वा सीता भृशं रुरोद, परमत्रस्ता च सा बाष्पगद्गदया गिरा उवाच। मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुं नार्हति, कामं सर्वा मां खादतं न वो वचः करिष्यामि। भीता सा सीता अशोकस्य विपुलां शाखाम् आलम्ब्य शोकेन भग्नमानसा भर्तारं चिन्तयामास। आर्ता सा मैथिली अश्रूणि व्यमुञ्चद् विललाप च। अयं लोकप्रवादः सत्य एव यद् अकाले पुरुषस्य स्त्रिया वा मृत्युरपि दुर्लभः। अहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरर्दिता दुःखिता च रामेण हीना मुहूर्तमपि जीवामि। विदितात्मना तेन रामेण हीनाया मम जीवितं दुर्लभम्। न जाने देहान्तरे मया कीदृशं महापापं कृतं येन घोरं सुदारुणम् इदं महद्दुःखं प्राप्यते। महता शोकेन वृता जीवितं त्यक्तुम् इच्छामि। राक्षसीभी रक्ष्यमाणया मया रामो नासाद्यते। मानुष्यं धिगस्तु, परवश्यतां धिग् अस्तु, यत्र आत्मच्छन्देन जीवितम् अपि त्यक्तुं न शक्यम्।

सुन्दरकाण्डम्

पञ्चदशः सर्गः

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत ॥१॥
सन्तानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलङ्कृताम् ॥२॥
तां स नन्दनसंकाशां मृगपक्षिभिरावृताम् ।
हर्म्यप्रासादसम्बाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥३॥
काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥४॥

अन्वयः—तत्रस्थः सः (हनुमान्) मैथिलीं वीक्षमाणः मार्गमाणः च सर्वां महीम् अवेक्षमाणः च ताम् अन्ववैक्षत ॥१॥ सन्तानकलताभिः पादपैः च उपशोभिताम्, दिव्यगन्धरसोपेताम्, सर्वतः समलंकृताम्, नन्दनसंकाशाम्, मृगपक्षिभिर् आवृताम्, हर्म्यप्रासादसंबाधाम्, कोकिलाकुलनिःस्वनाम्, काञ्चनोत्पलपद्माभिर् वापीभिर् उपशोभिताम्, बह्वासनकुथोपेताम्, बहुभूमिगृहायुताम्, रम्यैः सर्वर्तुकुसुमैः, फलवद्भिः

अर्थ:—वहाँ (शिंशिपा-वृक्ष पर) बैठे हुए वह हनुमान् जी सीता को देखते हुए और ढूँढते हुए, एवं सारी पृथिवी पर दृष्टि डालते हुए उन्हें खोजने लगे ॥१॥ संतानक लताओं और पेड़ों से सुशोभित, दिव्यगन्ध और रस से युक्त, सब ओर से समलंकृत, नन्दन वन के सादृश्य वाली, जंगली पशुओं और पक्षियों से व्याप्त, रनिवासों और राजमहलों से भरी हुई, कोकिलों के समूह से गुंजायमान, सुनहरी उत्पलों और कमलों वाली बावलियों से सुशोभित, अनेक आसनों और विछौनों से युक्त, बहु-

---

टि०:—१. **वीक्षमाणः** इतस्ततोऽवलोकयन् 'इधर उधर देखता हुआ'। **तत्रस्थः** शिंशिपास्थः 'शिंशिपा वृक्ष पर बैठा हुआ'। **मार्गमाणः** मैथिलीमार्गणाद् हेतोः 'सीता के ढूँढने के हेतु' "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति शानच् । २. **संतानकलताभिः** संतानकवृक्षस्य शाखाभिः, संतानक नन्दन के पांच वृक्षों में से एक है। ३. **नन्दनसंकाशाम्** नन्दनसदृशीम् । **कोकिलाकुलनिःस्वनाम्** कोकिलानां कुलं तेन निःस्वनां शब्दवतीम् । संस्कृत में प्रायः कोकिल (पुं०) का प्रयोग देखा जाता है, यहाँ कोकिला (स्त्री०) का प्रयोग हुआ है। ४. **बह्वासनकुथोपेताम्** बहुभिः आसनैः कुथैः आस्तरणैः च उपेताम् 'अनेक आसनों और विछौनों से युक्त'। **बहुभूमिगृहायुताम्** उपर्युपरि भूमियुक्ता गृहाः बहुभूमिगृहाः 'एक के ऊपर दूसरी इस प्रकार अनेक मंजिलों से युक्त घर' तैः आयुताम् 'उनसे सब ओर से भरी हुई'। भूमिगृहाणि बिलगृहाणि इति गोविन्दराजः।

सर्वर्तुकुसुमै रम्यैः फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥५॥
प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत ।
निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत् ॥६॥
विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः ।
समूलपुष्परचितैरशोकैः शोकनाशनैः ॥७॥
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् ।
कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः ॥८॥
स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः ।
पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा ॥९॥

पादपैः पुष्पितानाम् अशोकानां श्रिया च सूर्योदयप्रभाम्, विहगैः असकृत् निष्पत्रशाखामिव क्रियमाणां, (अशोकवाटिकाम्) तत्रस्थः सः मारुतिः प्रदीप्ताम् इव समुदैक्षत ॥२-६॥ शतशः विनिष्पतद्भिः चित्रैः पुष्पावतंसकैः, समूलपुष्परचितैः शोकनाशनैः अशोकैः, पुष्पभारातिभारैः मेदिनीं स्पृशद्भिर् इव कुसुमितैः कर्णिकारैः च सुपुष्पितैः किंशुकैः च [मारुतिः तां प्रदीप्ताम् इव उदैक्षत] ॥७-८॥ स देशः तेषां प्रभया सर्वतः प्रदीप्त इव [आसीत्] । विवृद्धमूला सुपुष्पिता बहवः पुंनागाः सप्तपर्णाः च तथा चम्पकोद्दालकाः शोभन्ते स्म । केचित् शातकुम्भनिभाः केचित् अग्निशिखप्रभाः

मंजिले घरों वाली, सब ऋतुओं में खिलने वाले सुन्दर फूलों से, फलवाले वृक्षों से और पुष्पित अशोकों की शोभा से सूर्योदय की कान्ति को धारण करने वाली, पक्षियों के द्वारा बार-बार पत्रहीन और शाखाहीन सी की जाती हुई, उस (अशोक वाटिका) को उस (वृक्ष) पर बैठे हुए उस पवनसुत (हनुमान्) ने (अशोक पुष्पों से) प्रदीप्त हुई सी देखा ॥२-६॥ सैंकड़ों नीचे गिरते हुए रंग-बिरंगे फूलों के गुच्छों से, जड़ों सहित फूलों से भरे हुए शोकनाशक अशोकों से, पुष्पसमूहों के अधिक बोझों से मानों पृथिवी को छूते हुए कुसुमित कनेरों और सुपुष्पित किंशुकों से [जलती हुई सी उस अशोकवाटिका को हनुमान् ने देखा] ॥७-८॥ वह स्थान उन (वृक्षों की) प्रभा से सब ओर से प्रदीप्त सा हो रहा था। बढ़े हुए मूलों वाले, सुन्दर फूलों वाले, बहुत से पुंनाग और सप्तपर्ण, तथा चम्पक और उद्दालक नामक वृक्ष सुशोभित

५. **सूर्योदयप्रभाम्** उद्यत्सूर्यसमकान्तिम् 'उदय होते हुए सूर्य के समान कान्ति वाली को' । ६. **मारुतिः** मरुतस्य अपत्यं पुमान्, हनुमान् । **समुदैक्षत** सम्+उद् √ईक्ष्, लङ्०, आत्म०, प्र०, एक० । **असकृत्** वारं वारम्, अनेकशः, शतशः । अशोकपुष्पैः प्रदीप्ताम् इव उदैक्षत इति उत्प्रेक्षा । ७. **चित्रैः** विचित्रैः विविधवर्णैः । **समूलपुष्परचितैः** समूलानि मूलसहितानि यानि पुष्पाणि तैः । ८. **पुष्पभारातिभारैः** पुष्पभारः पुष्पसमूहः स एव अतिभारो येषां तैः । ९. **पुंनागः** सुपारी का वृक्ष ।

विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः ।
शातकुम्भनिभाः केचित् केचिदग्निशिखप्रभाः ॥१०॥
नीलाञ्जननिभाः केचित् तत्राशोकाः सहस्रशः ।
नन्दनं विबुधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा ॥११॥
अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यश्रियायुतम् ।
द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणा युतम् ॥१२॥
पुष्परत्नशतैश्चित्रं पञ्चमं सागरं यथा ।
सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः ॥१३॥
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणद्विजैः ।
अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोहरम् ॥१४
शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम् ।
अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुंगवः ॥१५॥

केचित् नीलाञ्जननिभाः सहस्रशः अशोकाः तत्र [शोभन्ते स्म] ॥९-१०½॥ नन्दनं विबुधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा अचिन्त्यं दिव्यं रम्यश्रिया युतम् [अत एव] अतिवृत्तम्, द्वितीयम् आकाशम् इव च पुष्पज्योतिर्गणायुतं, पञ्चमं सागरं यथा पुष्परत्नशतैः चित्रं, सर्वर्तुपुष्पैः मधुगन्धिभिः पादपैः निचितं, नानानिनादैः मृगगणद्विजैः रम्यम्, अनेकगन्धप्रवहम्, पुण्यगन्धम्, मनोहरम्, गन्धाढ्यं शैलेन्द्रम् इव द्वितीयं

हो रहे थे। कुछ सुनहरी घड़ों जैसे, कुछ अग्नि की शिखा की प्रभा के समान प्रभा वाले, कुछ नीले अञ्जन जैसे हजारों अशोक वृक्ष वहाँ [शोभा पा रहे थे] ॥९-१०½॥ देवताओं के उद्यान नन्दन की तरह आह्लादक [और] कुबेर के उद्यान चैत्ररथ की तरह विचित्र, अचिन्त्य, दिव्य, रम्यश्री से युक्त, अतः उन (नन्दन और चैत्ररथ) से भी बढ़े हुए, पुष्प-रूपी तारागण से युक्त मानो दूसरे आकाश के समान, पांचवें (क्षीर) सागर की तरह सैंकड़ों पुष्प-रूपी रत्नों से विचित्र, सब ऋतुओं में खिलने वाले पुष्पों और मीठी गन्ध वाले वृक्षों से भरे हुए, नाना प्रकार की आवाजों वाले मृगसमूह और पक्षियों से रमणीय, अनेक गन्धों को वहन करने वाले (अतः) पवित्र गन्ध वाले, मन को हरने वाले, गन्ध से परिपूर्ण पर्वतराज (हिमालय) की तरह द्वितीय गन्धमादन (रूप) [उस]

उद्दालक 'लसूड़े का वृक्ष'। **नन्दनम्** आनन्दकम्। ११. **विबुधोद्यानम्** विबुधानां देवानाम् उद्यानं नन्दनम्। **चैत्ररथम्** कुबेरक्रीडावनम्। १२. **अतिवृत्तम्** उपमानीभूतवनद्वयाभ्याम् अधिकम्। **पुष्पज्योतिर्गणायुतम्** पुष्परूपज्योतिर्गणैः आयुतं व्याप्तम् 'पुष्प-रूपी तारागणों से व्याप्त'। १३. **सर्वर्तुपुष्पैः** सर्वेषु ऋतुषु पुष्पाणि येषु तैः पादपैः 'सब ऋतुओं में खिलने वाले फूलों वाले पेड़ों से'। १४. **मृगगणद्विजैः** मृगाणां गणाः मृगगणाः (ष० त०), मृगगणाः च द्विजाः च (द्वन्द्व), तैः। **अनेकगन्धप्रवहम्** अनेकान् गन्धान् प्रवहति इति तम्। १५. **पुण्यगन्धम्** पुण्यं गन्धं वाहयति इति तम्। इलावर्त और

स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् ॥१६॥
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया ॥१७॥

गन्धमादनं [तद्] वनं [ददर्श] ॥११-१४½॥ तस्याम् अशोकवनिकायां तु मध्ये स वानरपुङ्गवः स्तम्भसहस्रेण स्थितम्, कैलासपाण्डुरम्, प्रवालकृतसोपानम्, तप्त-काञ्चनवेदिकम्, चक्षूंषि मुष्णन्तम् इव, श्रिया द्योतमानम् इव, प्रांशुभावत्वात्

वन को [देखा] ॥११-१४½॥ उस अशोक वाटिका में बीच में उस वानरपुङ्गव ने एक हज़ार स्तम्भों पर स्थित, कैलास पर्वत के समान सफेद, प्रवाल से बने हुए सोपानों वाले, अग्नि में तपा कर शुद्ध किये गये सोने से बनी वेदिका वाले, आंखों को चुराते हुए से, शोभा से प्रकाशमान से, अधिक ऊँचा होने के कारण निर्मल आकाश

भद्राश्व के मध्य मेरु से पूर्व की ओर एक पर्वत का नाम जो अपने सुगन्धित वनों के लिये प्रसिद्ध है । वानरपुङ्गवः पुमान् गौः पुङ्गवः वृषभः, वानरेषु पुङ्गवः (तत्पु०), वानरश्रेष्ठः । **नन्दनं विबुधोद्यानं······गन्धमादनम्** (श्लोक ११-१४½) के अन्वय के विषय में विद्वानों में मतभेद है । रामायणशिरोमणि टीका के कर्त्ता ने इसे श्लोक १० में आई **शोभन्ते स्म** से अन्वित करते हुए **उद्यानं शुशुभे इति शेषः** लिखा है । तिलकटीकाकार और रामायणभूषण के कर्ता गोविन्दराज यहाँ श्लो० १६ से **ददर्श** क्रिया का अपकर्षण करते हैं । वस्तुतः पहले आई हुई क्रिया का अनुकर्षण ही उचित समझा जाता है, आगे आने वाली क्रिया का अपकर्षण उचित नहीं । इस से रामायणशिरोमणि के टीकाकार द्वारा शुशुभे क्रिया का प्रयोग ही उचित प्रतीत होता है । ऐसा करने के लिए **नन्दनम्** आदि सभी पदों को प्रथमा एक वचन मानना पड़ेगा । परन्तु यदि हम यहाँ आकाशं (श्लो० १२) को नपुं० प्रथमा एक० भी मान लें तो भी **सागरम्** (श्लो० १३) **शैलेन्द्रम्** (१५) और **गन्धमादनम्** (१५) कठिनाई उत्पन्न करते हैं । ये शब्द पुं० होने से इनके ये रूप द्वितीया एक० में ही मानने पड़ेंगे । इतने पदों में एकदम लिङ्ग-व्यत्यय नहीं माना जा सकता । अतः इनके साथ **ददर्श** क्रिया का व्यवहार ही उचित है । १६. **चैत्यप्रासादम्**, चैत्यं बुद्धमन्दिरं तद्वद् वर्तुलाकारं प्रासादम् 'चैत्य (बुद्ध-मन्दिर) के समान गोलाकार मन्दिर को ।' **स्तम्भसहस्रेण** स्तम्भानां सहस्रम् स्तम्भसहस्रं तेन 'एक हजार स्तम्भों के साथ' । 'एक हजार' के लिये सहस्र (नपुं०) का एकवचन में प्रयोग हुआ है । यहाँ आधारोऽधिकरणम् (पा० १।४।४५) से सप्तमी का प्रयोग अपेक्षित था । इसे स्तम्भसहस्रेणाधारभूतेन ऐसा समझना चाहिये । १७. **प्रवालकृतसोपानम्**, प्रवालैः कृतानि सोपानानि यस्य तम् । **तप्तकाञ्चनवेदिकम्** तप्तं काञ्चनं तप्तकाञ्चनम्

निर्मलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥१८॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥१९॥
मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥२०॥
पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपङ्कामनलङ्कारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥२१॥
पीडितां दुःखसन्तप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् ।
ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् ॥२२॥

निर्मलम् अम्बरम् उल्लिखन्तम् इव, अविदूरस्थम् ऊर्जितं चैत्यप्रासादं ददर्श ॥१५-१७½॥ ततः [सः] मलिनसंवीताम्, राक्षसीभिः समावृताम्, उपवासकृशाम्, दीनाम्, पुनः पुनः निःश्वसन्तीम्, शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखाम् इव अमलाम्, मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण धूमजालेन पिनद्धां विभावसोः शिखाम् इव रुचिरप्रभाम्, पीतेन क्लिष्टेन एकेन उत्तमवाससा संवीताम्, अनलङ्कारां, विपद्मां पद्मिनीम् इव सपङ्काम्, अङ्गारकेण ग्रहेण पीडितां रोहिणीम् इव, पीडिताम् तपस्विनीं दुःखसंतप्ताम्, परि-

---

को रेखाङ्कित करते हुये से, निकटस्थ भव्य, बुद्धमन्दिर जैसे (गोलाकार) महल को देखा ॥१५-१७½॥ उसके पश्चात् उस (हनुमान्) ने मैले वस्त्रों से आच्छादित, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवास के कारण दुवली, दीन, बार बार लम्बे सांस छोड़ती हुई, शुक्लपक्ष के आदि में चन्द्ररेखा की तरह निर्दोष, कठिनाई से पहिचाने जाने वाले रूप से धूएँ से ढकी हुई अग्नि की शिखा की तरह सुन्दर कान्ति वाली, पीले वर्ण के एक जीर्ण परन्तु बढ़िया वस्त्र से आवृत, अलंकारहीन, कमलहीन (पङ्कयुक्त) झील की तरह मलिन, अङ्गारक (मंगल अथवा केतु) ग्रह से ग्रस्त रोहिणी की

(कर्मधा०), तेन निर्मिताः वेदिकाः यस्मिन् तम् । १८. **प्रांशुभावत्वात्** अत्युन्नतत्वात् 'अत्यन्त ऊँचा होने के कारण' । **मलिनसंवीताम्** मलिनवस्त्रेणाच्छादिताम् 'मैले वस्त्र से आच्छादित' । १९. **अमलाम्** दोषसंसर्गरहिताम् । २०. **मन्दप्रख्यायमानेन** मन्दं प्रख्यायमानेन कथञ्चित् प्रत्यभिज्ञायमानेन 'जैसे तैसे अर्थात् कठिनाई से पहिचाने जाने वाले (रूप) से' । **पिनद्धाम्** पि (=अपि) √नह् + क्त, आ (टाप्), द्वितीया, एक० । २१. **क्लिष्टेन** जीर्णेन । **विपद्माम्** पद्मरहिताम् । **पद्मिनीम्** सरसीम् । **सपङ्काम्** मलिनाम् २२. **अङ्गारकेण** भौमेन (शिरोमणिटीका) 'मंगल ग्रह के द्वारा' । तिलक टीका के अनुसार **अङ्गारकेणेव** का अर्थ 'अंगारक (मंगल) ग्रह के तुल्य केतु ग्रह से' (तत्तुल्येन ग्रहेण केतुना—ति०) है । इव का दूसरी बार प्रयोग वाक्यालंकार के लिये है—द्वितीय इवशब्दो वाक्यालंकारे (भूषणटीका) ।

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥२३॥
प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥२४॥
नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥२५॥
सुखार्हां दुःखसन्तप्तां व्यसनानामकोविदाम् ।
तां विलोक्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ॥२६॥
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ।
ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ॥२७॥
यथारूपा हि दृष्टा सा तथारूपेयमङ्गना ।

क्षीणाम्, अश्रुपूर्णमुखीम्, दीनाम्, अनशनेन च कृशाम्, शोकध्यानपराम्, दीनाम्, नित्यं दुःखपरायणाम्, स्वगणेन हीनां श्वगणेन (च) आवृतां मृगीम् इव प्रियं जनम् अपश्यन्तीं राक्षसीगणं (च) पश्यन्तीम्, नीलनागाभया जघनं गतया एकया वेण्या नीरदापाये नीलया वनराज्या महीम् इव, सुखार्हां (परं) दुःखसंतप्ताम्, व्यसनानाम् अकोविदाम् [तां सीतां] ददर्श ॥१८-२५½॥ अधिकं मलिनां कृशां तां विशालाक्षीं विलोक्य उपपादिभिः कारणैः [सः] तर्कयामास सीता इति । कामरूपिणा तेन रक्षसा ह्रियमाणा यथारूपा हि तदा दृष्टा तथारूपा सा इयम् अङ्गना ॥२६-२७½॥

तरह पीड़ित बेचारी दुःखसंतप्त और दुर्बल, आंसुओं से भरे मुख वाली, दीन, उपवास के कारण दुबली, शोक के कारण ध्यानमग्न, दीन, नित्य ही दुःख से युक्त, अपने गण से छुटी हुई और कुत्तों के समूहों से घिरी हुई हिरणी की तरह (अपने) प्रियजन को न देखती हुई परन्तु राक्षसियों के समूह को देखती हुई, कृष्णसर्प की आभा वाली और जघनस्थल तक गई हुई एक मात्र वेणी से शरत्काल में नीली वन-पंक्ति से युक्त पृथिवी जैसी, सुख के योग्य (परन्तु) दुःख से सन्तप्त, दुःखों से अनभिज्ञ [उस सीता] को देखा ॥१८-२५½॥ अत्यन्त मलिन और दुबली उस विशाललोचना को देखकर पहचान में समर्थ कारणों से उसने निश्चय कर लिया कि यह सीता है । इच्छानुसार रूप धारण करने वाले उस राक्षस के द्वारा हरण की जाती हुई जैसे रूप वाली उस समय देखी गई थी वैसे रूप वाली ही वह यह स्त्री

---

२५. **नीलनागाभया** नीलः नागः नीलनागः (कर्म० धा०), तस्य आभया । **नीरदापाये** मेघापाये (तिलक), घनापगमे (शिरोमणि), शरदि (भूषण) । **जघनम्** पृष्ठभागम् । यहाँ वेणी के नीलनागाभा होने से किसी अन्य के द्वारा उसके स्पर्श से उसकी मृत्यु ध्वनित होती है, **एकया** से केशविन्यास के अभाव के कारण वेणी का जटीभूत होना सूचित होता है । **सुखार्हाम्** सुखयोग्याम् । **व्यसनानाम्** दुःखानाम् । २६. **अकोविदाम्** अविज्ञात्रीम् । २७. **उपपादिभिः** उपपादनशीलैः सीताबोधनसमर्थैः । २८. **सुभ्रूम्**

पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् ॥२८॥
कुर्वतीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः ।
तां नीलकण्ठीं बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम् ॥२९॥
सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा ।
इष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥३०॥
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् ।
निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ॥३१॥
शोकजालेन महता विततेन न राजतीम् ।
संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥३२॥

पूर्णचन्द्राननाम्, सुभ्रूम्, चारुवृत्तपयोधरां, प्रभया सर्वाः दिशः वितिमिराः कुर्वतीं, नीलकण्ठीम्, बिम्बोष्ठीम्, सुमध्याम्, सुप्रतिष्ठिताम्, मन्मथस्य रतिं यथा पद्मपलाशाक्षीं, पूर्णचन्द्रप्रभाम् इव सर्वस्य जगतः इष्टाम्, सुतनुं नियतां तापसीम् इव भूमौ आसीनां, भुजगेन्द्रवधूम् इव भीरुं निःश्वासबहुलां च, धूमजालेन संसक्तां विभावसोः शिखाम् इव विततेन महता शोकजालेन न राजतीम्, संदिग्धां स्मृतीम्

है ॥२६-२९½॥ पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली, सुन्दर भौंहों वाली, सुन्दर गोल पयोधरों वाली, (अपनी) प्रभा से सब दिशाओं को अन्धकार रहित करने वाली, (इन्द्रनीलमणि की प्रभा से) नीले कण्ठ वाली, बिम्बफल के समान लाल होंठों वाली, सुन्दर कटिप्रदेश वाली, सुप्रतिष्ठित पाद-तलों वाली, कामदेव की (पत्नी) रति की तरह कमल के पत्ते के समान आंखों वाली, पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा की तरह समस्त जगत् की पूज्या, सुन्दर शरीर वाली यतचित्त तापसी की तरह भूमि पर बैठी हुई, नागिन की तरह भीरु और दीर्घ निःश्वास लेती हुई, धूएँ के समूह से आवृत अग्नि की ज्वाला की तरह विस्तृत (और) महान् शोक-जाल से शोभाहीन, संदेह से युक्त अर्थ वाली स्मृति जैसी, क्षीण सम्पदा जैसी, नष्ट श्रद्धा सी, प्रतिहत आशा सी, विघ्नयुक्त सिद्धि सी, कलुषित बुद्धि सी, झूठे कलङ्क

शोभने भ्रुवौ यस्याः ताम् सुभ्रुवम् । उवङ्भावः आर्षः । **चारुवृत्तपयोधराम्** चारू मनोहरौ वृत्तौ वर्तुलौ च पयोधरौ यस्याः ताम् । २९. **वितिमिराः** विगतं तिमिरं याभ्यः ताः 'जिनसे अन्धकार चला गया है' । दशमासान् स्नानेन विना मलिनापि प्रभया दिशः वितिमिराः कुर्वन्तीम् इति प्रभातिशयोक्तिः—भूषण । **नीलकण्ठीम्** सौभाग्यसूचकेन्द्रनीलमणिमयकण्ठस्थभूषणप्रभया तद्वर्णकण्ठाम्—तिलक । 'सौभाग्यसूचक इन्द्रनीलमणि से बने हुए कण्ठ में धारण किये भूषण की प्रभा से उसी वर्ण के कण्ठ वाली' । **नीलकेशीम्** इति गोविन्दराजस्य पाठः । **सुप्रतिष्ठिताम्** सुप्रतिष्ठितपादतलाम् । ३२. न राजतीम् अराजन्तीम् । नुम् का अभाव आर्ष है । **विततेन** विस्तृतेन । **संसक्ताम्** संबद्धाम् ।

तां स्मृतीमिव सन्दिग्धामृद्धिं निपतितामिव ।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ॥३३॥
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥३४॥
रामोपरोधव्यथितां रक्षोगणनिपीडिताम् ।
अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः ॥३५॥
वाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा ॥
वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥३६॥
मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥३७॥
तस्य सन्दिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥३८॥

इव, निपतिताम् ऋद्धिम् इव, विहतां च श्रद्धामिव, प्रतिहतामाशामिव, सोपसर्गां सिद्धिं यथा, सकलुषां बुद्धिमिव, अभूतेन अपवादेन निपतितां कीर्तिम् इव, रामोपरोधव्यथिताम्, रक्षोगणनिपीडिताम्, अबलाम्, ततस्ततः वीक्षमाणाम् मृगशावाक्षीम्, बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा अप्रसन्नेन वदनेन पुनः पुनः निःश्वसन्तीम्, मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हां, कालमेघैर् आवृतां नक्षत्रराजस्य प्रभाम् इव अमण्डिताम्, आम्नायानाम् अयोगेन प्रशिथिलां विद्याम् इव च तां देवीं सीतां तथा निरीक्ष्य तस्य

से नष्ट हुई कीर्ति सी, राम (दर्शन) के उपरोध से व्यथित, राक्षसगणों से पीड़ित, अबला, इधर उधर देखती हुई बालमृगनयनी, आंसुओं के जल से भरे हुए काली और टेढ़ी पलकों वाले अप्रसन्न मुख से बार बार उसासें भरती हुई, (स्नान न करने से) मलपङ्क से युक्त, दीन, मण्डन के योग्य, कृष्ण मेघों से ढके हुए चन्द्रमा की प्रभा की तरह अमण्डित और, वेदों का योग न होने के कारण (अथवा अभ्यासों के अभाव के कारण) विस्मृत हुई विद्या सी उस देवी सीता को उस प्रकार देखकर

---

३३. **स्मृतीम्** दीर्घत्व आर्ष है । **संदिग्धाम्** संदिग्धार्थाम् । **ऋद्धिम्** सम्पदम् । **निपतिताम्** क्षीणाम् । ३४. **सोपसर्गाम्** सविघ्नाम् । **सकलुषाम्** सकालुष्याम् । **अभूतेन** अजातेन असत्येन । **अपवादेन** कलङ्केन । ३५. **रामोपरोधव्यथिताम्**—रामप्राप्तिनिरोधेन व्यथिताम्—भूषण, रामसेवाप्रतिबन्धेन—तिलक । ३६. **कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा**—कृष्णानि वक्राणि चाक्षिपक्ष्माणि यत्र तेन पक्ष्मणा । ३८. **आम्नायानां** वेदानाम् **अयोगेन** असम्बन्धेन **प्रशिथिलाम्** अप्राप्तप्रतिष्ठां विद्याम् वेदबाह्यविद्याम् । यद्वा आम्नायानाम् अभ्यासानाम् अभावेन **प्रशिथिलाम्** अस्थिरपदां विद्याम् इव—भूषण । 'वेदों से सम्बद्ध न होने के कारण वेदबाह्यविद्या, अथवा अभ्यासों के अभाव के कारण विस्मृत हुई विद्या की तरह' । **संदिदिहे** सम्√दिह्, लिट्, प्र० एक० ।

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलङ्कृताम् ।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥३९॥
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥४०॥
वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् ।
तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ॥४१॥
सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥४२॥
श्यामानि चिरयुक्तत्वात् तथा संस्थानवन्ति च ।
तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥४३॥

बुद्धिः संदिदिहे ॥२८-३८॥ हनुमान् संस्कारेण हीनाम् अतः अर्थान्तरं गतां वाचम् यथा (संस्कारेण हीनाम्) अनलंकृतां सीतां दुःखेन बुबुधे ॥३९॥ विशालाक्षीम्, अनिन्दितां तां राजपुत्रीं समीक्ष्य कारणैः उपपादयन् [सः]सीतेति तर्कयामास ॥४०॥ रामः च वैदेह्याः अङ्गेषु यानि [आभरणजालानि] तदा अन्वकीर्तयत्, गात्रशोभीनि तानि आभरणजालानि [सः] अलक्षयत् ॥४१॥ सुकृतौ कर्णवेष्टौ च, सुसंस्थितौ श्वदंष्ट्रौ च, हस्तेषु मणिविद्रुमचित्राणि आभरणानि च, चिरयुक्तत्वात् श्यामानि तथा

उसकी बुद्धि में सन्देह उत्पन्न हो गया ॥२८-३८॥ हनुमान् ने संस्कारहीन (प्रकृति, प्रत्यय आदि की अस्पष्टता से युक्त) और (इसी लिये) अन्य अर्थ को प्राप्त हुई वाणी की तरह, अलंकारहीन सीता को कठिनाई से पहिचाना ॥३९॥ बड़े बड़े नेत्रों वाली, अनिन्दित, राजा (जनक) की उस पुत्री को देखकर (अनेक) हेतुओं से उपपत्ति लगाते हुए [उसने] यह सीता है ऐसा निश्चय किया ॥४०॥ और राम ने वैदेही के अगों पर जो [आभूषण-समूह] उस समय वर्णन किये थे, अंगों को सुशोभित करने वाले उन सब आभरणसमूहों को उसने देखा ॥४१॥ सुन्दर बने हुए कुण्डल, भली प्रकार धारण किये हुए त्रिकर्णक और हाथों में मणियों और मूँगों से रंगविरंगे दिखने वाले आभूषण, चिरकाल तक धारण करने से काले वर्ण वाले और उसी प्रकार स्थायी स्थिति वाले (ऐसे) जिन (गहनों) का राम ने वर्णन किया था

---

३९. **संस्कारेण हीनाम्** संस्कारः शब्दव्युत्पत्तिः तेन हीनाम्, सीतापक्षे यथोचितस्नानादिरूपसंस्कृत्या हीनाम् । **बुबुधे** √बुध बोधने, लिट्, प्र०, ए० । ४०. **कारणैः** हेतुभिः उपपादयन् सन् इयं सीतेति **तर्कयामास** अनुमानेन निश्चयं चकार । ४१. **तदा** प्रस्थानसमये 'हनुमान् के प्रस्थान के समय' । **अलक्षयत्** अपश्यत् । ४२. **सुकृतौ** सुष्ठु कृतौ 'भली प्रकार बने हुए' । **कर्णवेष्टौ** कुण्डले । **सुसंस्थितौ** सुप्रतिष्ठितौ **श्वदंष्ट्रौ** श्वदंष्ट्रः त्रिकर्णाख्यः पुष्पाकारः कर्णपार्श्वभूषणविशेषः 'त्रिकर्ण नाम वाला पुष्पाकार कानों में डालने का गहना ।' ४३. **श्यामानि** विरहतापोष्ण्यवशाच्

तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ॥४४॥
पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवंगमैः ॥४५॥
भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले ।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥४६॥
इदं चिरगृहीतत्वाद् वसनं क्लिष्टवत्तरम् ।
तथाप्यनूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥४७॥

संस्थानवन्ति च, रामः यानि अन्वकीर्तयत् अहम् एतानि तानि एव मन्ये ॥४२-४३॥ तत्र यानि अवहीनानि तानि अहं न उपलक्षये, यानि अस्याः न अवहीनानि तानि इमानि (सन्ति), (अत्र) संशयः न ॥४४॥ कनकपट्टाभं. पीतं स्रस्तं नगासक्तं च तदा प्लवङ्गमैः दृष्टं शुभम् उत्तरीयं तद् वसनम्, धरणीतले दृष्टानि च मुख्यानि स्वनवन्ति महान्ति च भूषणानि अनया एव अपविद्धानि ॥४५-४६॥ चिरगृहीतत्वात् इदं वसनं क्लिष्टवत्तरम्, तथापि अनूनम्, तद्वर्णं (च)। यथा इतरत् श्रीमत् तथा [इदम् अपि] ॥४७॥ इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य प्रिया सती महिषी (अस्ति) या

मैं इनको वही (गहने) समझता हूं ॥४२-४३॥ वहाँ (ऋष्यमूक आदि पर) जो (गहने) गिर गए उनको मैं (यहाँ) नहीं देख रहा। जो इसके नहीं गिरे वे यही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥४४॥ सुनहरी वस्त्र की आभा वाला, पीले वर्ण वाला, नीचे गिरा हुआ और वृक्ष में अटका हुआ, उस समय वानरों द्वारा देखा गया, सुन्दर, सिर पर ओढ़ने का वह वस्त्र, और पृथिवी-तल पर देखे गए मुख्य, बजने वाले और महान् आभूषण इस (सीता) के द्वारा ही फैंके गए थे ॥४५-४६॥ चिरकाल तक धारण करने के कारण यह (अधः) वस्त्र अधिक मैला हो गया है, फिर भी इसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं और यह उसी (पीले) वर्ण वाला है। जिस प्रकार दूसरा (सिर पर धारण करने वाला वस्त्र) शोभा सम्पन्न (था) उसी प्रकार यह भी है ॥४७॥ यह सोने के वर्ण के समान वर्ण वाले अङ्गों वाली राम की प्रिया और

श्यामीभूतानि । चिरयुक्तत्वात् चिरधृतत्वात् 'चिरकाल तक धारण करने के कारण' ४४. **अवहीनानि** पतितानि । ऋष्यमूकादौ इत्यर्थः । ४५. **कनकपट्टाभम्** कनकपट्टस्याभा दीप्तिर्यस्मिन् तत् । **नगासक्तम्** नगे वृक्षे आसक्तम् । **प्लवङ्गमैः** वानरैः । ४६. **अपविद्धानि** परिक्षिप्तानि पातितानि । ४७. **तद्वर्णम्** सः एव (पीतः) वर्णः यस्य तत् । ४८. **कनकवर्णाङ्गी** कनकस्य वर्णः इव वर्णो यस्या अङ्गानां सा (ब० व्री०) सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य उत्तरपदलोपश्च (पावा० २।२।२४) । **सती**

इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रनष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥४८॥
इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥४९॥
स्त्री प्रनष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥५०॥
अस्या देव्या यथा रूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् ।
रामस्य च यथा रूपं तस्येयमसितेक्षणा ॥५१॥

प्रनष्टा अपि अस्य मनसः न प्रणश्यति ॥४८॥ इयं सा [सीता] यत्कृते रामः इह चतुर्भिः तप्यते—कारुण्येन, आनृशंस्येन, शोकेन, मदनेन च। स्त्री प्रनष्टा इति कारुण्यात्, आश्रिता [नष्टा] इति आनृशंस्यतः, पत्नी नष्टा इति शोकेन, प्रिया [नष्टा] इति मदनेन च ॥४९-५०॥ अस्याः देव्याः यथारूपम् अङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम्

पतिव्रता रानी है जो खो जाने पर भी उसके मन से विस्मृत नहीं हो रही है ॥४८॥ यह वही सीता है जिसके लिये राम इस लोक में चार से संतप्त हो रहा है—कारुण्य से, आनृशंस्य से, शोक से और काम से। स्त्री (जो आपत्काल में रक्षा के योग्य है, रक्षा न की जा सकने के कारण) चली गई इस लिये कारुण्य से, (वन में चले आने पर भी) वह मेरे आश्रित थी (आश्रिता की रक्षा होनी चाहिये थी पर न हो सकी इस लिये चली गई) अतः आनृशंस्य से, पत्नी (जो कि सब धार्मिक कार्यों की साधन-भूत है) खो गई इस लिये धर्मनाश की चिन्ता के शोक से, (परम रूप सौन्दर्य आदि से युक्त परम सुखों की साधन-भूत) प्रिया खो गई अतः (पूर्व संभोग आदि के स्मरण से उत्पन्न) काम से (वह संतप्त हो रहा है) ॥४९-५०॥ इस देवी [सीता] का जिस प्रकार का रूप और अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सौष्ठव है [राम का भी उसी प्रकार का रूप और अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सौष्ठव है] और राम का जिस प्रकार का रूप [और अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सौष्ठव है सीता का भी वैसा ही रूप और अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सौष्ठव है,

---

पतिव्रता। **प्रनष्टापि न प्रणश्यति** नादृष्टा भवति। यहाँ **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** (पा० ८।४।१४) से **प्रणश्यति** में नश् धातु के न् को ण् आदेश हो गया, परन्तु **प्रनष्टा** में नश् धातु के श् का ष् आदेश हो जाने पर **नशेः षान्तस्य** (पा० ८।४।३६) से नश् के न् को ण् को निषेध हो गया है। ४९. **यत्कृते** यस्याः कृते। **आनृशंस्येन** अक्रूरत्वेन। ५०. आपत्काले स्त्रियो रक्षणीयाः तन्न कृतम् इति कारुण्यात् परितापः। वनं प्रस्थितमपि माम् आश्रिता सा च न रक्षिता इति आनृशंस्यतः आश्रितसंरक्षणस्वभावत्वेन तदकरणात् परितापः। पत्नी सर्वधर्मसाधन-भूता नष्टा इति धर्मनाशचिन्ताशोकेन परितापः। प्रिया इति परमरूपलावण्यादिमती परमसुखसाधनभूता नष्टा इति पूर्वसंयोगादिस्मरणजमदनेन परितापः। एक ही अर्थ में कारुण्येन आनृशंस्येन (तृतीया) कारुण्यात् (पञ्चमी) और आनृशंस्यतः (तसिल्) का प्रयोग देखने योग्य है। ५१. तस्याः सीतायाः रूपं शरीरम् अङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवं च

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥५२॥
दुष्करं कृतवान् रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ॥५३॥
एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः ।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥५४॥

[रामस्य अपि तथा रूपम् अङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम्] रामस्य च यथा रूपं [अङ्गप्रत्यङ्ग-सौष्ठवम् सीताया अपि तथा रूपम् अङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम्] [अतः] इयम् असितेक्षणा तस्य रामस्य [एव] ॥५१॥ अस्याः देव्याः मनः तस्मिन् [प्रतिष्ठितम्] तस्य च [मनः] अस्यां प्रतिष्ठितम्, तेन इयं स धर्मात्मा च मुहूर्तम् अपि जीवति ॥५२॥ प्रभुः रामः दुष्करं कृतवान् यद् अनया हीनः आत्मनो देहं धारयति, शोकेन (च) न अवसीदति ॥५३॥ एवं सीतां तया दृष्ट्वा हृष्टः पवनसंभवः मनसा प्रभुं रामं जगाम तं प्रशशंस च ॥५४॥

इस लिये] यह श्यामलोचना उस [राम] की ही है ॥५१॥ इस देवी का मन उस [राम में] लगा हुआ है और उसका [मन] इसमें [लगा हुआ है], इसीलिये यह [देवी] और वह धर्मात्मा क्षणभर जी पा रहे हैं (अर्थात् अन्यथा क्षण भर भी नहीं जी पा सकते) ॥५२॥ प्रभु राम ने बहुत कठिन कार्य किया है जो वे इसके बिना शरीर को धारण किये हुए हैं (और) शोक से प्राणत्याग नहीं कर रहे हैं ॥५३॥ इस प्रकार सीता को वैसे देख कर पुलकित पवनसुत (हनुमान्) मन से प्रभु राम के पास चला गया और उनकी स्तुति करने लगा ॥५४॥

यथा यथाविधम् तथाविधमेव रामस्यापि रूपम् अङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवं च । रामस्य रूपम् अङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवं च यथा यथाविधम् तथाविधमेवास्याः रूपम् अङ्गप्रत्यङ्ग-सौष्ठवं च, अतः इयम् असितेक्षणा तस्या योग्येति शेषः—भूषण । ५२. तेन इयं स च धर्मात्मा मुहूर्त्तं जीवति, अन्यथा मुहूर्त्तमपि न जीवेद् इति भावः । ५३. **अनया हीनः**—हीन के योग में जिससे हीन हो उसमें तृतीया । ५४. **पवनसम्भवः**—पवनात् सम्भवति इति पवनसम्भवः । **जगाम** √गम्, लिट्, प्र० ए० । **प्रशशंस** प्र√शंस्, लिट्, प्र० ए० ।

षोडश: सर्ग:

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुङ्गवः ।
गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥१॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान् विललाप ह ॥२॥
मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया ।
यदि सीता हि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः ॥३॥
रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥४॥

प्रशस्तव्यां तां सीतां तु प्रशस्य गुणाभिरामं रामं च (प्रशस्य) हरिपुङ्गवः पुनः चिन्तापरः अभवत् ॥१॥ बाष्पपर्याकुलेक्षणः तेजस्वी सः हनुमान् मुहूर्तम् ध्यात्वा इव सीताम् आश्रित्य विललाप ह ॥२॥ गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया मान्या सीता अपि यदि दुःखार्ता, तर्हि कालो दुरतिक्रमः हि ॥३॥ रामस्य धीमतः लक्ष्मणस्य च व्यवसायज्ञा देवी [सीता] जलदागमे गङ्गा इव अत्यर्थं न क्षुभ्यते ॥४॥

प्रशंसा के योग्य उस सीता की प्रशंसा करके और अपने गुणों से चित्त को लुभाने वाले राम की स्तुति करके वानरश्रेष्ठ (हनुमान्) पुनः चिन्तित हो गया ॥१॥ आंसुओं से भरी हुई आँखों वाला वह तेजस्वी हनुमान् क्षणभर के लिए ध्यान-मग्न सा होकर सीता के विषय में विलाप करने लगा ॥२॥ गुरुजनों द्वारा शिक्षित लक्ष्मण के बड़े भाई की पत्नी मान्या सीता भी यदि दुःखी है तो (यही स्वीकार करना होगा कि) काल का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता ॥३॥ राम के और बुद्धिमान् लक्ष्मण के पराक्रम को जानने वाली देवी [सीता], वर्षाकाल में गंगा की

---

१. **प्रशस्य** प्र√शंस्+य (ल्यप्)। **हरिपुङ्गवः** हरीणां हरिषु वा पुङ्गवः श्रेष्ठः। **गुणाभिरामम्** (स्व-)गुणैः अभिरमयति इति तम्। २. **बाष्पपर्याकुलेक्षणः** बाष्पैः पर्याकुले ईक्षणे अक्षिणी यस्य सः। **आश्रित्य** उद्दिश्य, विषयीकृत्य ३. **गुरुविनीतस्य** गुरुभिः विनीतस्य शिक्षितस्य 'गुरुजनों द्वारा शिक्षित'। **गुरुप्रिया** गुरोः ज्येष्ठभ्रातुः प्रिया पत्नी 'ज्येष्ठभ्राता की पत्नी'। अपने से बड़े किसी भी आदरणीय व्यक्ति के लिए गुरु शब्द का प्रयोग हो सकता है। **कालो हि दुरतिक्रमः** जगद्रक्षक-रामलक्ष्मणगुप्तायाः सीताया अपि यदीदृशं दुःखं प्राप्तं तदा कालो दुरतिक्रम एवेति भावः। ४. **व्यवसायज्ञा** व्यवसायं पराक्रमं जानाति 'पराक्रम को जानने वाली'। **जल-दागमे** जलदानां मेघानाम् आगमे, वर्षतौ। **क्षुभ्यते** क्षोभं प्राप्नोति। क्षुभ 'संचलने' धातु भ्वादि, दिवादि और क्र्यादिगणों में पढ़ा गया है। भ्वादि में क्षोभते (आ०)

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम् ।
राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ॥५॥
तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् ।
जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥६॥
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः।
रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ॥७॥
विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमविक्रमः ।
वने रामेण विक्रम्य महेन्द्रेणेव शम्बरः ॥८॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥९॥

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणां वैदेहीं राघवः अर्हति, तं [राघवं] च इयम् असितेक्षणा ॥५॥ लोककान्तां श्रियम् इव नवहेमाभां तां [सीतां] दृष्ट्वा [हनुमान्] मनसा रामं जगाम, इदं वचनं च अब्रवीत् ॥६॥ अस्याः विशालाक्ष्याः हेतोः महाबलः वाली हतः, वीर्ये रावणप्रतिमः कबन्धः च निपातितः ॥७॥ वने विक्रम्य महेन्द्रेण शम्बरः इव रामेण संख्ये भीमविक्रमः राक्षसः विराधः च हतः ॥८॥ जनस्थाने भीम-

---

तरह बहुत अधिक क्षोभ को प्राप्त नहीं हो रही है ॥४॥ समान स्वभाव, अवस्था और आचरण वाली तथा समान कुल और लक्षणों वाली होने से सीता राम के योग्य है और राम इस श्यामलोचना के योग्य है ॥५॥ लोक की कमनीया लक्ष्मी की तरह नवसुवर्ण की आभा वाली उस [सीता] को देखकर [हनुमान्] मन से राम का चिन्तन करने लगा, और उसने यह वचन कहा ॥६॥ इस विशालाक्षी के हेतु (राम के द्वारा) महाबली वाली मारा गया, वीरता में रावण के समान कबन्ध मार डाला गया ॥७॥ और वन में विक्रम दिखाकर, इन्द्र के द्वारा शम्बर की तरह, राम से युद्ध में भीमविक्रम राक्षस विराध मारा गया ॥८॥ जनस्थान में चौदह हज़ार भीमकर्मा राक्षस अग्नि की ज्वाला जैसे तीरों से मार डाले गए ॥९॥

दिवादि में क्षुभ्यति (पर०) और क्र्यादि में क्षुभ्नाति (पर०) रूप बनता है । क्षुभ्यते पदव्यत्यय से दिवादि का रूप है । ५. **तुल्यशीलवयोवृत्ताम्** तुल्यं शीलं स्वभावः वयः अवस्था वृत्तं चारित्रं च यस्याः ताम् । **तुल्याभिजनलक्षणाम्** तुल्यः अभिजनः कुलं लक्षणं सामुद्रिकं सुलक्ष्म च यस्याः ताम् 'समान कुल और सामुद्रिक शुभ चिह्नों वाली' । ६. **लोककान्ता** लोकस्य कान्ता कमनीया । कान्ता —√कम् 'कामना करना' +त(क्त)+आ (टाप्) । लोकः कान्तः शोभावान् यया, यत्कान्त्यैव सर्वः प्रकाशते इत्यर्थः— तिलक । ७. **अस्य हेतोर्विशालाक्ष्याः** यहाँ हेतु के योग में षष्ठी का प्रयोग हुआ है । सर्वनाम्नस्तृतीया च —वा० । ८. **शम्बरः** एक असुर जिसके इन्द्र द्वारा वध का उल्लेख ऋग्वेद में है । ९. **अग्निशिखोपमैः** अग्नेः शिखा उपमा येषां तैः

खरश्च निहतः संख्ये त्रिशिराश्च निपातितः ।
दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना ॥१०॥
ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् ।
अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकविश्रुतः ॥११॥
सागरश्च मयाऽऽक्रान्तः श्रीमान् नदनदीपतिः ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥१२॥
यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥१३॥
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा ।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात् कलाम् ॥१४॥

कर्मणां रक्षसां चतुर्दश सहस्राणि अग्निशिखोपमैः शरैः निहतानि ॥९॥ विदितात्मना रामेण संख्ये खरः निहतः, त्रिशिराः च महातेजाः दूषणः च निपातितः ॥१०॥ वालिपालितं दुर्लभं वानराणाम् ऐश्वर्यं च अस्याः निमित्ते लोकविश्रुतः सुग्रीवः प्राप्तवान् ॥११॥ अस्याः विशालाक्ष्याः हेतोः (एव) च मया नदनदीपतिः श्रीमान् सागरः आक्रान्तः, इयं पुरी च निरीक्षिता ॥१२॥ अस्याः कृते यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं जगत् चापि परिवर्तयेत् [तदपि] युक्तम् एव इति मे मतिः ॥१३॥ त्रिषु लोकेषु राज्यं वा [अधिकम्], जनकात्मजा सीता वा [अधिका इति विचार्यमाणे सति] सकलं त्रैलोक्यराज्यं सीतायाः कलाम् [अपि] नाप्नुयात् ॥१४॥

आत्मज्ञानी राम के द्वारा युद्ध में खर मार डाला गया और त्रिशिरा और महातेजस्वी दूषण धराशायी कर दिए गए ॥१०॥ वाली द्वारा पाला गया वानरों का दुर्लभ स्वामित्व इसके कारण जगत्प्रसिद्ध सुग्रीव को मिल गया ॥११॥ और इस विशाल-लोचना के कारण ही मैंने नदों और नदियों के स्वामी श्रीसम्पन्न सागर को पार किया और यह [लंका] पुरी देखी ॥१२॥ इसके लिए यदि राम समुद्र तक फैली हुई पृथिवी और जगत् को भी उलट दे (तो भी) उचित ही है, ऐसा मेरा मत है ॥१३॥ तीनों लोकों का राज्य (अधिक है) अथवा जनक की पुत्री सीता (अधिक) है [ऐसा विचार आने पर] त्रिलोकी का समस्त राज्य सीता के सोलहवें अंश को

'अग्नि की शिखा की उपमा वालों से' । १०. **विदितात्मना** विदित आत्मा यस्य तेन । ११. **ऐश्वर्यम्** ईश्वरस्य भावः, स्वामित्वम् । **सुग्रीवः** शोभना ग्रीवा यस्य सः । **अस्याः निमित्ते** "निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम्" इति षष्ठी सप्तम्यर्थे । अस्यां निमित्ते सत्याम् इत्यर्थः । १२. **आक्रान्तः** आ√क्रम्+त(क्त), प्रथमा, एक०, तीर्णः । १३. **परिवर्तयेत्** भ्रामयेत् अधरोत्तरं संहरेद् इति यावत् । १४. **कलाम्** षोडशांशम् । गाय के चार पाद, एक पाद में दो शफ (खुर) और एक शफ में दो कला होती हैं । अतः आर्यों के समाज में पाद चौथे, शफ आठवें और कला शब्द सोलहवें भाग के अर्थ

इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः ।
सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥१५॥
उत्थिता मेदिनीं भित्त्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते ।
पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः ॥१६॥
विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिर्वर्तिनः ।
स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी ॥१७॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः ।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥१८॥
सर्वान् भोगान् परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता ।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥१९॥
सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा ।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥२०॥

धर्मशीलस्य मैथिलराजस्य महात्मनः जनकस्य सुता, भर्तृदृढव्रता इयं सा सीता [या] हलमुखक्षते क्षेत्रे पद्मरेणुनिभैः शुभैः केदारपांसुभिः कीर्णां मेदिनीं भित्त्वा उत्थिता ॥१५-१६॥ यशस्विनी एषा [सीता] विक्रान्तस्य आर्यशीलस्य संयुगेषु अनिर्वर्तिनः राज्ञः दशरथस्य ज्येष्ठा स्नुषा ॥१७॥ धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य विदितात्मनः रामस्य सा इयं दयिता भार्या राक्षसीवशम् आगता ॥१८॥ भर्तृस्नेहबलात्कृता सर्वान् भोगान् परित्यज्य कष्टानि (च) अचिन्तयित्वा [या] निर्जनं वनं प्रविष्टा, फलमूलेन संतुष्टा भर्तृशुश्रूषणापरा या वने अपि भवने यथा परां

भी नहीं पा सकता ॥१४॥ धार्मिक स्वभाव वाले, मैथिलों के राजा महात्मा जनक की पुत्री, पति में दृढ़ भक्ति वाली यह वह सीता है [जो] हल के मुख से चीरे हुए खेत में पद्मपराग के समान खेत की शुभ धूलियों से व्याप्त पृथिवी का भेदन करके निकली है ॥१५-१६॥ यह यशस्विनी सीता अत्यन्त पराक्रमशाली, उत्तम-स्वभाव, युद्धों में पीठ न दिखाने वाले राजा दशरथ की ज्येष्ठ पुत्रवधू है ॥१७॥ धर्म को जानने वाले, कृतज्ञ, आत्मज्ञानी राम की उस प्रकार की यह प्यारी पत्नी राक्षसियों के वश में पड़ गई है ॥१८॥ पति के स्नेहबल से प्रवृत्त हुई सब भोगों को छोड़कर (और) कष्टों का विचार न करके जो निर्जन वन में चली गई, फलों और मूलों से सन्तुष्ट पतिसेवा में निरत जो वन में भी महल की तरह परम प्रसन्नता का

में रूढ़ हो गया। १५-१६. भर्तृदृढव्रता भर्तरि दृढव्रता। जनक की पुत्री होने से उसकी कुलीनता, पति में दृढ़ भक्ति होने से चारित्र्य और धरती से उत्पन्न होने से उसका दिव्य अमानुष जन्म प्रदर्शित किया गया है। १७. विक्रान्तस्य अतिपराक्रमशीलस्य। आर्यशीलस्य पूज्यस्वभावस्य, संयुगेषु युद्धेषु। १८. दयिता प्रिया। १९. भर्तृस्नेहबलात्कृता भर्तुः स्नेहबलात् प्रवर्तिता। २०. फलमूलेन फलानि च मूलानि च

सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी ।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी ॥२१॥

इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः ।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥२२॥

अस्या नूनं पुनर्लाभाद् राघवः प्रीतिमेष्यति ।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥२३॥

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च ।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥२४॥

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान् ।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥२५॥

प्रीतिं भजते, कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी अनर्थानाम् अभागिनी सा इयं एतां यातनां सहते ॥१९-२१॥ शीलसंपन्नां रावणेन प्रमथिताम् इमां तु राघवः पिपासितः प्रपाम् इव द्रष्टुम् इच्छति ॥२२॥ राज्यपरिभ्रष्टः राजा पुनः मेदिनीं प्राप्य इव राघवः अस्याः पुनर्लाभात् नूनं प्रीतिम् एष्यति ॥२३॥ कामभोगैः परित्यक्ता बन्धुजनेन च हीना [इयं सीता] तत्समागमकाङ्क्षिणी आत्मनः देहं धारयति ॥२४॥ न एषा राक्षस्यः पश्यति न इमान् पुष्पफलद्रुमान्, एकस्थहृदया नूनं

अनुभव कर रही है, सुनहरी वर्ण वाले अंगों वाली नित्य सुन्दर मुस्कान के साथ भाषण करने वाली विपत्तियों के योग्य न होती हुई उस प्रकार की यह (सीता) इस दुःख को सहन कर रही है ॥१९-२१॥ शीलसम्पन्न, रावण से पीडित, इसे राम इस प्रकार देखना चाहते हैं जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति जलशाला को ॥२२॥ राज्य से च्युत राजा जिस प्रकार पुनः राज्य को प्राप्त करके प्रसन्न होता है, उसी प्रकार राम इसकी पुनःप्राप्ति से निश्चय ही प्रसन्नता को प्राप्त होगा ॥२३॥ कामों और भोगों से छूटी हुई और बन्धुजनों से हीन [यह सीता] उस (राम) के समागम की इच्छा वाली अपने शरीर को धारण कर रही है ॥२४॥ न यह राक्षसियों को देखती है (और) न इन फूलों और फलों वाले वृक्षों को, एक (राममात्र) में स्थित हृदय

फलमूलम् (समाहार द्वन्द्व) तेन । भर्तृशुश्रूषणापरा पतिशुश्रूषणे निरता । सन्नन्ताद् स्वार्थे णिचि "ण्यासश्रन्थ—" इति युच् । २१. **अनर्थानाम्** आपदाम् । **अभागिनी** अनर्हा । २२. **प्रपा** पानीयशालिका । २३. **एष्यति** प्राप्स्यति । २४. **कामभोगैः** काम्यन्ते इति कामाः, भुज्यन्ते इति भोगाः, स्रक् चन्दनादयः, तैः । **तत्समागमकाङ्क्षिणी** रामसमागमविषयकोत्कटेच्छावती । २५. **राक्षस्यः** राक्षसी शब्द से द्वितीया बहु० में राक्षसीः रूप बनता है, राक्षस्यः आर्ष प्रयोग है । **एकस्थहृदया** एकस्मिन् लक्ष्ये तिष्ठति

भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि ।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥२६॥
दुष्करं कुरुते रामो हीना यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥२७॥
इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् ।
सुखार्हां दुःखितां ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः ॥२८॥
क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभेक्षणा
या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः
संरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले ॥२९॥
हिमहतनलिनीव नष्टशोभा
व्यसनपरम्परया निपीडचमाना ।
सहचररहितेव चक्रवाकी
जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥३०॥

रामम् एव अनुपश्यति ॥२५॥ भर्ता नाम नार्या भूषणाद् अपि परं शोभनम्, शोभनार्हा (अपि) तेन रहिता एषा न हि शोभते ॥२६॥ प्रभुः रामः दुष्करं कुरुते यद् अनया हीनः आत्मनः देहं धारयति, दुःखेन (च) नावसीदति ॥२७॥ असितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणां सुखार्हां (परं) दुःखिताम् इमां ज्ञात्वा ममापि मनः व्यथितम् ॥२८॥ क्षितिक्षमा पुष्करसन्निभेक्षणा या राघवलक्ष्मणाभ्यां रक्षिता सा सम्प्रति विकृतेक्षणाभिः राक्षसीभिः वृक्षमूले संरक्ष्यते ॥२९॥ हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीडचमाना सहचररहिता चक्रवाकी इव जनकसुता कृपणां दशां

वाली केवल राम को ही देखती है ॥२५॥ पति नारी के लिए भूषण से भी बढ़कर परम शोभा है, (इसीलिए) शोभा के योग्य भी उसके बिना यह सुशोभित नहीं हो रही है ॥२६॥ प्रभु राम बहुत कठिन कार्य कर रहे हैं जो इसके बिना अपने शरीर को धारण किए हुए हैं और दुःख से प्राणत्याग नहीं कर रहे हैं ॥२७॥ श्याम केशों वाली, शतपत्र (कमल) के समान आँखों वाली सुख के योग्य (परन्तु) दुःखी इस (सीता) को देखकर मेरा मन भी व्यथित हो रहा है ॥२८॥ पृथिवी के तुल्य क्षमा वाली, कमलपत्र के समान आँखों वाली, जो राम और लक्ष्मण के द्वारा रक्षा की गई थी वह अब विकृत नयनों वाली राक्षसियों द्वारा वृक्ष के मूल पर रखी जा रही है ॥२९॥ पाले से नष्ट कमलिनी की तरह नष्ट शोभा वाली दुःखों की परम्परा से दुःखी सहचररहित चक्रवाकी की तरह जनकसुता [सीता] शोचनीय दशा को

तादृशं हृदयं यस्याः सा । २६. शोभनं शोभा । २८. असितकेशान्ताम् असितः केशान्तः यस्याः ताम्, केशानाम् अग्रे नैल्यं स्त्रीणां दुर्लभम् । २९. क्षितिक्षमा क्षितितुल्या

अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः
शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः ।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मि-
रभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ॥३१॥
इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य
सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः ।
संश्रित्य तस्मिन् निषसाद वृक्षे
बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥३२॥

प्रपन्ना ॥३०॥ पुष्पावनताग्रशाखाः अशोकाः अस्याः दृढं शोकं हि जनयन्ति वै । हिमव्यपायेन अभ्युत्थितः नैकसहस्ररश्मिः शीतरश्मिः च [दृढं शोकं जनयति] ॥३१॥ इत्येवम् अर्थम् अन्ववेक्ष्य सीता इयम् इत्येव तु जातबुद्धिः बली तरस्वी हरीणाम् ऋषभः कपिः तस्मिन् वृक्षे संश्रित्य निषसाद ॥३२॥

प्राप्त हो गई है ॥३०॥ पुष्पों से झुके हुए शाखाओं के अग्रभाग वाले अशोकवृक्ष इसके अत्यधिक शोक को ही उत्पन्न कर रहे हैं । और वसन्त में उदित हुआ हजारों रश्मियों वाला चन्द्रमा भी [अत्यधिक शोक को उत्पन्न कर रहा है] ॥३१॥ इस प्रकार सारी बात को विचारकर (और) यह सीता ही है ऐसा निश्चय करके बली वेगवान्, वानरपुङ्गव कपि [हनुमान्] वृक्ष का आश्रय लेकर बैठ गया ॥३२॥

क्षमा यस्याः सा । ३०. कृपणाम् शोचनीयाम् । ३१. **हिमव्यपायेन** वसन्तेन । **नैकसहस्ररश्मिः** नैकानि अनेकानि सहस्राणि रश्मयः यस्य सः शीतरश्मिः चन्द्रः । **अभ्युत्थितः** उदितः । ३२. **संश्रित्य** शिंशिपाभिधे वृक्षे संश्रित्य—शिरोमणि, ताम् एव बुद्धिं संश्रित्य—तिलक ॥

सप्तदश: सर्ग:

ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः ।
प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥१॥
साचिव्यमिव कुर्वन् स प्रभया निर्मलप्रभः ।
चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥२॥
स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥३॥
दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः ।
स ददर्श विदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥४॥
एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ॥५॥

ततः कुमुदखण्डाभः निर्मलोदयः चन्द्रः हंसः नीलम् उदकम् इव निर्मलं नभः प्रजगाम ॥१॥ प्रभया साचिव्यम् इव कुर्वन् निर्मलप्रभः सः चन्द्रमाः शीतैः रश्मिभिः पवनात्मजम् सिषेवे ॥२॥ ततः सः अम्भसि भारैः न्यस्तां नावम् इव शोकभारैः (न्यस्तां) इव पूर्णचन्द्रनिभाननां सीतां ददर्श ॥३॥ वैदेहीं दिदृक्षमाणः मारुतात्मजः सः हनुमान् विदूरस्थाः घोरदर्शनाः राक्षसीः ददर्श ॥४॥ एकाक्षीम्, एककर्णां च, तथा कर्णप्रावरणाम्, अकर्णाम्, शङ्कुकर्णाम् च, मस्तकोच्छ्वासनासिकाम्, अतिकायोत्तमाङ्गीं

तत्पश्चात् (दिन छुप जाने पर) कुमुदों के समूह की आभा वाला, स्वच्छ उदय वाला चन्द्रमा नीले जल में हंस की तरह आकाश में उदित हुआ ॥१॥ (अपनी) प्रभा से मानों सहायता करता हुआ निर्मल प्रभा वाला वह चन्द्रमा शीत किरणों से पवन-सुत (हनुमान्) की सेवा कर रहा था ॥२॥ तत्पश्चात् उस (हनुमान्) ने जल में भारों से दबी हुई सी नाव की तरह शोक के बोझों से दबी हुई सी, पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मुख वाली, सीता को देखा ॥३॥ वैदेही को देखना चाहते हुए वायुसुत उस (हनुमान्) ने दूर बैठी हुई भयङ्कर आकृतियों वाली राक्षसियों को देखा ॥४॥ एक आंख वाली, एक कान वाली, कानों से ढके हुए शिर वाली, बिना कानों वाली, शङ्कु जैसे कानों वाली, ऊपर को उठी हुई नासिका वाली, बड़े शिर वाली, पतली

---

१. **कुमुदखण्डाभः** कुमुदखण्डं कुमुदसमूहः तस्य आभा इव आभा यस्य सः। २. **साचिव्यम्** साहाय्यम् । **सिषेवे** √सेव्, लिट्, आत्म०, प्र० एक० । ३. **न्यस्ताम्**, अधोनीताम्, नताम्, आक्रान्ताम् । **अम्भसि** जले । ४. **दिदृक्षमाणः** √दृश् + सन् + शानच्, प्र० एक०, द्रष्टुम् इच्छुः । ५. **कर्णप्रावरणा** कर्णौ प्रावरणे शिरसः आच्छादकौ यस्याः सा 'सिर को ढक डालने वाले कानों वाली' । **मस्तकोच्छ्वासनासिकाम्** ऊर्ध्वमुख-

अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम् ।
ध्वस्तकेशीं तथाऽकेशीं केशकम्बलधारिणीम् ॥६॥
लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम् ।
लम्बोष्ठीं चिबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम् ॥७॥
ह्रस्वां दीर्घां च कुब्जां च विकटां वामनां तथा ।
करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ॥८॥
विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः ।
कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥९॥
वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखाः ।
गजोष्ट्रहयपादाश्च निखातशिरसोऽपराः ॥१०॥

च, तनुदीर्घशिरोधराम्, ध्वस्तकेशीम्, तथा अकेशीम्, केशकम्बलधारिणीम्, लम्बकर्णललाटां च, लम्बोदरपयोधराम्, लम्बोष्ठीम्, चिबुकोष्ठीं च, लम्बास्याम्, लम्बजानुकाम्, ह्रस्वां, दीर्घां च, कुब्जां च, विकटाम् तथा वामनाम्, करालाम्, भुग्नवक्त्रां च, पिङ्गाक्षीम्, विकृताननाम् [च] ददर्श ॥५-८॥ विकृताः, पिङ्गलाः, कालीः, क्रोधनाः, कलहप्रियाः, कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः, वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखाः, गजोष्ट्रहयपादाः च, अपराः निखातशिरसः, एकहस्तैकपादाः च, खरकर्ण्यश्वकर्णिकाः,

---

और लम्बी गरदन वाली, अल्प केशों वाली, केशहीना, कम्बल रूपी केशों को धारण करने वाली, लम्बे कानों और ललाट वाली, लम्बे पेट और पयोधरों वाली, लम्बे होठों वाली, ठोडी पर पड़े होंठ वाली, लम्बे मुँह वाली, लम्बे घुटनों वाली, छोटे आकार वाली, लम्बे आकार वाली, कुबड़ी, टेढ़े शरीर वाली, वामना, भयंकर कृष्ण वर्ण वाली, निम्न वक्त्र वाली, पीली आँखों वाली और विकृत मुख वाली (अनेक) राक्षसियों को (उसने) देखा ॥५-८॥ बिगड़े हुए शरीरों वाली, पिंगल वर्ण वाली, काले वर्ण वाली, क्रोधी स्वभाव वाली, कलह में रुचि वाली, कालायस, महाशूल और कूट मुद्गर नामक आयुधों को धारण करने वाली, वराह (सूअर), मृग, शेर, भैंसे, बकरे और गीदड़ी जैसे मुखों वाली, हाथी ऊँट और घोड़े जैसे पांवों वाली,

---

नासिकाम् । ६ **अतिकायोत्तमाङ्गीम्** अतिकायं महत् उत्तमाङ्गं शिरः यस्याः ताम् 'बड़े शिर वाली को' । **तनुदीर्घशिरोधराम्** अस्थूलदीर्घग्रीवाम् 'पतली और लम्बी गरदन वाली को' । **ध्वस्तकेशीम्** अल्पकेशीम् । **केशकम्बलधारिणीम्** कम्बलरूपकेशधारिणीम् 'कम्बल जैसे केशों को धारण करने वाली को' । ७. **चिबुकोष्ठीम्** चिबुके ओष्ठः यस्याः सा 'ठोडी पर पड़े हुए होंठ वाली को' । ८. **विकटाम्** विकृताम्, वक्रशरीराम् । **करालाम्** भयङ्करकृष्णवर्णाम् । **भुग्नवक्त्राम्** । निम्नवक्त्राम् । १०. **निखातशिरसः** कबन्धवद् उरःप्रदेशगतशिरसः, गात्रान्तर्वर्तिशिरसः 'कबन्ध की तरह छाती के अन्दर धंसे हुए सिर वालियों अथवा

एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्वकर्णिका: ।
गोकर्णीर्हस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापरा: ॥११॥
अतिनासाश्च काश्चिच्च तिर्यक्श्वासा अनासिका: ।
गजसंनिभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिका: ॥१२॥
हस्तिपादा महापादा गोपादा: पादचूलिका: ।
अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरी: ॥१३॥
अतिमात्रास्यनेत्राश्च दीर्घजिह्वाननास्तथा ।
अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखी: सूकरीमुखी: ॥१४॥
हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शना: ।
शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधना: कलहप्रिया: ॥१ ॥
करालधूम्रकेशिन्यो राक्षसीर्विकृताननाः ।
पिबन्ति सततं पानं सुरामांससदाप्रिया: ॥१६॥

गोकर्णी:, हस्तिकर्णी: च, तथा अपरा: हरिकर्णी:, काश्चित् अतिनासा: च, तिर्यक्श्वासा:, अनासिका:, गजसंनिभनासा:, ललाटोच्छ्वासनासिका: च, हस्तिपादा:, महापादा:, गोपादा:, पादचूलिका:, अतिमात्रशिरोग्रीवा:, अतिमात्रकुचोदरी:, अतिमात्रास्यनेत्रा: च, तथा दीर्घजिह्वानना:, अजामुखी:, हस्तिमुखी:, गोमुखी:, सूकरीमुखी:, हयोष्ट्रखर-वक्त्रा: च, घोरदर्शना:, शूलमुद्गरहस्ता: च, क्रोधना:, कलहप्रिया:, करालधूम्रकेशिन्य:,

---

कुछ धड़ के अन्दर धंसे हुए शिर वाली, एक हाथ और एक पांव वाली, गधे जैसे कानों वाली और घोड़े जैसे कानों वाली, बैल जैसे कानों वाली, हाथी जैसे कानों वाली, वैसे ही कुछ सिंह अथवा कपि जैसे कानों वाली, कुछ बहुत बड़े नाकों वाली, तिरछे नाकों वाली, बिना नाकों वाली, हाथी के समान नाकों अर्थात् सूंडों वाली, मस्तक की ओर सांस निकालने वाले नाकों वाली, हाथी जैसे पांवों वाली, बड़े-बड़े पांवों वाली, गायों जैसे पांवों वाली, पांवों तक लटकते हुए जूड़े वाली, बहुत बड़े सिर और गरदन वाली, बहुत बड़े कुचों और उदरों वाली, बहुत बड़े मुख और नेत्रों वाली, उसी प्रकार लम्बी जीभों और मुखों वाली, बकरी जैसे मुखों वाली, हाथी जैसे मुखों वाली, बैल जैसे मुखों वाली, सूअरी जैसे मुखों वाली, घोड़ों ऊँटों और गधों जैसे मुखों वाली, भयंकर आकृतियों वाली, शूल और मुद्गर को हाथों में धारण करने वाली, क्रोधी स्वभाव वाली, झगड़ालू, टेढ़े

शरीर के अन्दर वर्तमान सिर वालियों को'। ११. हरिकर्णी: हरे: सिंहस्य कपे: वा कर्णौ इव कर्णौ यासां ता: 'सिंह अथवा बन्दर के कानों के समान कानों वालियों को'। १३. पादचूलिका: पादयो: संलग्ना: चूला: (चूडा:) शिर:केशा: यासां ता: 'पांवों पर लटकते हुए सिर के केशों वालियों को'। १६. पिबन्ति के स्थान पर गोविन्दराज का **पिबन्ती:** पाठ ही साधु है। **सुरामांससदाप्रिया:** सुरा च मांसं च

मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः ।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ॥१७॥
स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम् ।
तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥१८॥
लक्षयामास लक्ष्मीवान् हनुमाञ्जनकात्मजाम् ।
निष्प्रभां शोकसंतप्तां मलसंकुलमूर्धजाम् ॥१९॥
क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव ।
चारित्रव्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम् ॥२०॥
भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषिताम् ।
राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम् ॥२१॥

विकृताननाः, सततं पानं पिबन्तीः, सुरामांससदाप्रियाः, मांसशोणितदिग्धाङ्गीः, मांसशोणितभोजनाः, रोमहर्षणदर्शनाः, स्कन्धवन्तं वनस्पतिं परिवार्य उपासीनाः, ताः राक्षसीः कपिश्रेष्ठः ददर्श ॥८-१७½॥ तस्याधस्तात् च लक्ष्मीवान् हनुमान् अनिन्दितां राजपुत्रीं देवीं तां जनकात्मजां लक्षयामास ॥१८-१९॥ सः हनुमान् तत्र निष्प्रभां, शोकसन्तप्तां, मलसंकुलमूर्धजाम्, क्षीणपुण्याम् (अत एव) भूमौ च्युताम् ताराम् इव भूमौ निपतितां, चारित्रव्यपदेशाढ्याम्, भर्तृदर्शनदुर्गताम्, उत्तमैः भूषणैः हीनाम् (परं)

और धूम्रवर्ण केशों वाली, बिगड़ी शक्लों वाली, निरन्तर शराब पीने वाली, हमेशा मदिरा और मांस, में रुचि रखने वाली, मांस और शोणित से लिपे अंगों वाली, माँस और शोणित का भोजन करने वाली, रोमांचित चेहरों वाली, तनों वाले वृक्ष को घेर कर बैठी हुई, उन राक्षसियों को उस श्रेष्ठ वानर (हनुमान्) ने देखा ॥८-१७½॥ और उसके नीचे शोभायुक्त हनुमान् नें निन्दा के अयोग्य उस राजकुमारी देवी जानकी को देखा ॥१८-१९॥ उस हनुमान् ने वहाँ प्रभाहीन, शोकसंतप्त, मल से संकुल केशों वाली, क्षीण हुए पुण्यों वाली (और इसीलिये) भूमि पर गिरी हुई तारा की तरह भूमि पर पड़ी हुई, पातिव्रत्य धर्म के आचरण से प्राप्त ख्याति से युक्त, पति के दर्शनों में असमर्थ, उत्तम भूषणों से हीन परन्तु पति की प्रीति के कारण शोभायमान, राक्षसों के स्वामी (रावण) के द्वारा रोकी हुई, बन्धुजनों से

सुरामांसे, ते सदा प्रिये यासां ताः 'हमेशा सुरा और मांस से प्यार करने वालियें को'। १७. **मांसशोणितदिग्धाङ्गीः** मांसेन शोणितेन च दिग्धानि लिप्तानि अङ्गानि यासां ताः 'मांस और शोणित से लिप्त अंगों वालियों को'। १९. **लक्ष्मीवान्**—सीतादर्शनजनितशोभायुक्तः । २०. **चारित्रव्यपदेशाढ्याम्**—पतिव्रताधर्माचरणख्यातिसंपन्नाम् 'पतिव्रता के धर्म के आचरण से प्राप्त ख्याति से युक्त'। **भर्तृदर्शनदुर्गताम्**—भर्तुः दर्शनं दुर्गतं दुर्लभं यस्याः ताम् । २१. **भर्तृवात्सल्यभूषिताम्**—पत्युः अति-

वियूथां सिंहसंरुद्धां बद्धां गजवधूमिव ।
चन्द्ररेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवावृताम् ॥२२॥
क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् ।
स तां भर्तृहिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वशे ॥२३॥
अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् ।
ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम् ॥२४॥
ददर्श हनुमांस्तत्र लतामकुसुमामिव ।
सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलङ्कृता ।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति च न भाति च ॥२५॥
मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम् ।
संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान् कपिः ॥२६॥

भर्तृवात्सल्यभूषितां, राक्षसाधिपसंरुद्धाम्, बन्धुभिः च विनाकृताम्, वियूथां सिंहसंरुद्धां गजवधूम् इव बद्धाम्, पयोदान्ते शारदाभ्रैः आवृताम् चन्द्ररेखाम् इव, असंस्पर्शात् क्लिष्टरूपाम् (अत एव) अयुक्तां वल्लकीम् इव, भर्तृहिते युक्ताम्, रक्षसां वशे अयुक्ताम्, अशोकवनिकामध्ये (अपि) शोकसागरम् आप्लुताम्, सग्रहां रोहिणीम् इव ताभिः परिवृताम्, अकुसुमां लताम् इव (च) तत्र तां (सीतां) ददर्श ॥१९-२४½॥ मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चापि अलङ्कृता सा (सीता) पङ्कदिग्धा मृणाली इव विभाति च न भाति च ॥२५॥ हनुमान् कपिः मलिनेन (अतएव) परिक्लिष्टेन वस्त्रेण संवृताम्

हीन, अपने झुंड से बिछुड़ी हुई (और) सिंह के द्वारा रोकी हुई परन्तु अपने झुंड में आसक्ति रखने वाली हथिनी की तरह (अपने पति में) आसक्त, वर्षाकाल की समाप्ति पर शरत्कालीन मेघों से घिरी हुई चन्द्ररेखा-सी, संस्पर्शहीनता के कारण कठोर शरीर वाली और इसीलिये वादकहीन वीणा-सी, पति के हित में लगी हुई, राक्षसों की अधीनता के अयोग्य, अशोकवाटिका के मध्य में भी शोकसागर में डूबी हुई, (राहु) ग्रह से युक्त रोहिणी की तरह उन राक्षसियों से घिरी हुई और पुष्पहीन लता सी वहाँ उस सीता को देखा ॥१९-२४½॥ मल से लिप्त अंगों वाली परन्तु शरीर से शोभायमान वह सीता पङ्क से लिप्त कमल-दण्डिका की तरह शोभायमान हो भी रही थी और नहीं भी ॥२५॥ वानर हनुमान् ने मलिन अतएव कठोर वस्त्र से संवृत उस नारी, मृग के छौने की सी आंखों वाली, दीन-वदना परन्तु पति के तेज के कारण दीनता-रहित चित्त वाली, अपने शील से

प्रीत्या शोभावतीम् । **विनाकृताम्**—रहिताम् । २२. **वियूथाम्** यूथहीनाम् । **बद्धाम्** स्वयूथविषयकातिस्नेहयुक्ताम् 'अपने झुंड के विषय में अत्यधिक स्नेह से युक्त' । **पयोदान्ते** वर्षान्ते । २३. **असंस्पर्शात्** पतिस्पर्शराहित्यात् **क्लिष्टरूपाम्** पराभूतस्वरूपाम् अत एव **अयुक्ताम्** वादकहीनाम् **वल्लकीम्** वीणाम् । **अयुक्ताम्** अयोग्याम् । २४. **सग्रहाम्** क्रूरग्रहाविष्टाम् 'क्रूरग्रह से घिरी हुई' । **अदीनाम्** दैन्यरहितचित्ताम् ।

तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा ।
रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम् ॥२७॥
तां दृष्ट्वा हनुमान् सीतां मृगशावनिभेक्षणाम् ।
मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः ॥२८॥
दहन्तीमिव निःश्वासैर्वृक्षान् पल्लवधारिणः ।
संघातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ॥२९॥
तां क्षामां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥३०॥
हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम् ।
मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥३१॥
नमस्कृत्वाथ रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ।
सीतादर्शनसंहृष्टो हनुमान् संवृतोऽभवत् ॥३२॥

तां भामिनीम्, मृगशावाक्षीम्, दीनवदनां (परं) भर्तृतेजसा अदीनाम्, स्वेन शीलेन रक्षिताम्, असितलोचनां देवीं सीतां ददर्श ॥२६-२७॥ मृगशावनिभेक्षणाम्, त्रस्तां मृगकन्यकाम् इव समन्ततः वीक्षमाणां तां सीतां दृष्ट्वा, पल्लवधारिणः वृक्षान् निःश्वासैः दहन्तीम् इव, शोकानां संघातम् इव, उत्थितां दुःखस्य ऊर्मिम् इव, क्षामाम्, सुविभक्ताङ्गीम्, विनाभरणशोभिनीम् तां मैथिलीं प्रेक्ष्य मारुतिः हनुमान् अतुलं प्रहर्षं लेभे ॥२८-३०॥ तत्र च मदिरेक्षणां तां (सीतां) दृष्ट्वा सः हनुमान् हर्षजानि अश्रूणि मुमोच, राघवं च नमः चक्रे ॥३१॥ अथ रामाय लक्ष्मणाय च नमस्कृत्वा सीतादर्शन-संहृष्टः वीर्यवान् (सः) हनुमान् संवृतः अभवत् ॥३२॥

रक्षित, अश्वेत नेत्रों वाली उस देवी सीता को देखा ॥२६-२७॥ मृग के छौने जैसे चितवन वाली, डरी हुई मृगी की तरह सब ओर निहारती हुई उस सीता को देखकर (और) पल्लवों को धारण करने वाले वृक्षों को निःश्वासों से जलाती हुई सी, दुःखों के संघात जैसी, शोक (सागर) की उठी हुई लहर जैसी, रूखी कान्ति वाली (परन्तु) सुविभक्त अंगों वाली, गहनों के बिना भी सुशोभित होने वाली उस मैथिली को देखकर पवनसुत हनुमान् को अतुल हर्ष हुआ ॥२८-३०॥ और वहाँ नशीली आँखों वाली उस (सीता) को देखकर उस हनुमान् ने हर्ष से उत्पन्न अश्रुओं का विमोचन किया और राम को नमस्कार किया ॥३१॥ तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण को नमस्कार करके सीता के दर्शनों से प्रसन्नचित्त शक्तिशाली वह हनुमान् (पत्तों में) छुप गया ॥३२॥

---

२९. दुःखस्य दुःखोदधेः उत्थितां ताम् ऊर्मिम् इव । ३१. राघवं नमश्चक्रे—उपपद-विभक्ति की अपेक्षा कारक विभक्ति के बलीयस्त्व के कारण चतुर्थी के स्थान पर द्वितीया । ३२. संवृतः लीनः 'छुप गया' ।

अष्टादश: सर्ग:

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम् ।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किञ्चिच्छेषा निशाभवत् ॥१॥
षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥२॥
अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः ।
प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥३॥
विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ॥४॥
भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः ।
न तु तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ॥५॥

पुष्पितपादपं वनं तथा विप्रेक्षमाणस्य वैदेहीं विचिन्वतः च (तस्य हनुमतः) निशा किञ्चिच्छेषा अभवत् ॥१॥ सः (हनुमान्) विरात्रे षडङ्गवेदविदुषां, क्रतुप्रवरयाजिनां ब्रह्मरक्षसां ब्रह्मघोषान् शुश्राव ॥२॥ अथ महाबाहुः महाबलः दशग्रीवः मङ्गलवादित्रैः श्रोत्रमनोहरैः शब्दैः प्राबोध्यत ॥३॥ महाभागः, प्रतापवान्, स्रस्तमाल्याम्बरधरः राक्षसेन्द्रः विबुध्य तु वैदेहीम् अन्वचिन्तयत् ॥४॥ मदनेन तस्यां भृशं नियुक्तः च

फूले हुए पेड़ों वाले वन को उस प्रकार देखते हुए और सीता को ढूंढ़ते हुए (उस हनुमान्) को रात्रि कुछ ही शेष रह गई ॥१॥ उस (हनुमान्) ने रात्रि की समाप्ति पर छः अंगों सहित वेदों को जानने वाले, उत्तम यज्ञों से यजन करने वाले ब्राह्मण-राक्षसों की वेद-ध्वनियों को सुना ॥२॥ उसके पश्चात् महाबाहु (और) महाबली रावण माङ्गलिक बाजों को बजाने वाले जनों के द्वारा कानों और मन को अच्छे लगने वाले शब्दों से जगाया गया ॥३॥ महाभाग, प्रतापी, शिथिल माला और वस्त्र को धारण करने वाला राक्षसराज (रावण) जागकर सीता का ही चिन्तन करने लगा ॥४॥ और काम के द्वारा उस (सीता) में अत्यधिक आसक्त और मदोन्मत्त

---

१. **किञ्चिच्छेषा** अपरयाममात्रशेषा 'अन्तिम प्रहरमात्र शेष रह गया है जिसमें'। २. **विरात्रे** रात्रिविपर्यासे 'रात्रि बीत जाने पर'। **ब्रह्मरक्षसाम्** ब्राह्मणराक्षसानाम् 'ब्राह्मण राक्षसों के'। **ब्रह्मघोषान्** वेदनिनदान् 'वेद के घोषों को'। ३. **मङ्गलवादित्रैः** माङ्गलिकवाद्यवद्भिः 'मांगलिक बाजों को बजाने वाले (राक्षसों) के द्वारा'। **स्रस्तमाल्याम्बरधरः** 'शिथिल माला और वस्त्र को धारण किये हुए' ५. **मदोत्कटः**

स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् ।
तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥६॥
वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् ।
सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ॥७॥
ईहामृगैश्च विविधैर्वृतां दृष्टिमनोहरैः ।
वीथीः सम्प्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥८॥
नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम् ।
अशोकवनिकामेव प्राविशत् सन्ततद्रुमाम् ॥९॥
अङ्गनाः शतमात्रं तु त व्रजन्तमनुव्रजन् ।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥१०॥

मदोत्कटः (सः) राक्षसः तं कामम् आत्मनि गूहितुं तु न शशाक ॥५॥ सर्वाभरणैः युक्तः अनुत्तमां श्रियं बिभ्रत् वीथीः संप्रेक्षमाणः च सः सर्वपुष्पफलोपगैः विविधैः नगैः जुष्टाम्, पुष्करिणीभिः च वृतां, नानापुष्पोपशोभिताम्, परमाद्भुतैः मत्तैः विहगैः च सदा विचित्राम्, दृष्टिमनोहरैः विविधैः ईहामृगैः च वृताम्, मणिकाञ्चनतोरणाम्, नानामृगगणाकीर्णाम्, प्रपतितैः फलैः वृताम्, संततद्रुमां ताम् अशोकवनिकाम् एव प्राविशत् ॥६-९॥ महेन्द्रं देवगन्धर्वयोषितः इव शतमात्रम् अङ्गनाः तु व्रजन्तं तं

(वह) राक्षस उस काम को अपने अन्दर छुपा न सका ॥५॥ सब गहनों से युक्त और अद्वितीय शोभा को धारण किये हुए, और (अशोक वाटिका के) मार्गों को देखता हुआ वह (रावण) सब प्रकार के पुष्पों और फलों से लदे हुए विविध प्रकार के वृक्षों से युक्त, कमल-सरोवरों से व्याप्त, नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित, परम अद्भुत और मस्त पक्षियों से सदा रंग-बिरंगी दिखने वाली, दृष्टि और मन को हरने वाले अनेक प्रकार के क्रीड़ा-मृगों से व्याप्त, मणियों से युक्त सुनहरी तोरणों वाली, नाना मृगसमूहों से भरी हुई, टूटकर गिरे हुए फलों से व्याप्त (और) निरन्तर वृक्षों वाली उस अशोक-वाटिका में ही प्रविष्ट हो गया ॥६-९॥ महेन्द्र का अनुसरण करने वाली देवों और गन्धर्वों की स्त्रियों की तरह सौ की संख्या में स्त्रियों ने गमन करते हुए

मदोन्मत्तः । ८. ईहामृगैः ईहाप्रधानैः मृगैः, क्रीडामृगैः 'चञ्चल अथवा क्रीडाशील वन्यपशुओं के द्वारा ।' यहाँ दृष्टिमनोहर विशेषण से युक्त होने के कारण ईहामृग का 'वृक' अर्थ उचित नहीं । वीथीः मार्गान् । १०. अनुव्रजन्=अनु+अव्रजन्, लङ्० प्र० पु०, ब० व०; यहाँ अ (अट्) का अभाव आर्ष है । पौलस्त्यम् पुलस्त्यस्य अपत्यम्

दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः ।
वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥११॥
काञ्चनैश्चैव भृङ्गारैर्जह्रुः सलिलमग्रतः ।
मण्डलाग्रा बृसीश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥१२॥
काचिद् रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य भ्राजतीम् ।
दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥१३॥
राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् ।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥१४॥
निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥१५॥

पौलस्त्यं अनुव्रजन् ॥१०॥ तत्र काश्चित् योषितः काञ्चनीः दीपिकाः जगृहुः । (काश्चित्) च वालव्यजनहस्ताः (अगच्छन्), अपराः च तालवृन्तानि (जगृहुः) ॥११॥ (काश्चित्) चैव काञ्चनैः भृङ्गारैः सलिलम् अग्रतः जह्रुः । अन्याः चैव मण्डलाग्राः बृसीः गृह्य पृष्ठतः ययुः ॥१२॥ काचित् दक्षिणा तदा पानस्य पूर्णां, रत्नमयीं, भ्राजतीं पात्रीं दक्षिणेन एव पाणिना जग्राह ॥१३॥ अपरा राजहंसप्रतिकाशं, पूर्णशशिप्रभं, सौवर्णदण्डं छत्रं गृहीत्वा पृष्ठतः ययौ ॥१४॥ निद्रामदपरीताक्ष्यः रावणस्य उत्तम-

---

पुलस्त्य-पुत्र (रावण) का अनुगमन किया ॥१०॥ वहाँ कुछ स्त्रियाँ सौवर्ण दीपकों को उठाए हुए थीं, कुछ छोटे पंखों को हाथों में लिये हुए जा रही थीं और अन्य ताल-वृन्तों (ताड़ के पंखों) को लिये हुए थीं ॥११॥ और कुछ स्त्रियाँ सुवर्णनिर्मित (कनकपुष्पाकार) जलपात्रों से जल को आगे-आगे ले जा रही थीं। और अन्य गोलाकार अग्रभागों वाले आसनों को लेकर पीछे-पीछे जा रही थीं ॥१२॥ कोई चतुर कामिनी उस समय मदिरा से भरी, रत्नजटित, प्रकाशमान पात्री को दाहिने हाथ से उठाए हुए थी ॥१३॥ अन्य स्त्री राजहंस-सदृश, पूर्ण चन्द्र की आभा वाले, सुनहरी डंडे वाले छत्र को लेकर पीछे-पीछे जा रही थी ॥१४॥ निद्रा के नशे से भरी आँखों वाली रावण की उत्तम स्त्रियाँ अपने वीर पति का इस प्रकार अनुगमन

रावणम् । १२. भृङ्गारैः कलशैः । टीकाकार तीर्थ के अनुसार 'धतूरे के पुष्प के आकार के सदृश आकार वाले जलपात्र भृङ्गार कहलाते हैं' । जह्रुः √हृ, लिट्, प्र० पु०, ब० व० । **मण्डलाग्राः** मण्डलाकाराणि अग्राणि यासां ताः 'गोल आकार वाले अग्रभाग वालियों को' । **बृसीः** आसनानि । **गृह्य** √ग्रह्+य (ल्यप्) । यहाँ धातु से पूर्व उपसर्ग न आने पर भी क्त्वा के स्थान पर ल्यप् का आदेश आर्ष है । रामायण और महाभारत में ऐसे रूपों का बाहुल्य है । १३. **पानस्य पूर्णाम्** पानेन पूर्णाम्, शेषे षष्ठी, इति तिलक टीकाकारः । "पूरणगुणसुहितार्थ०" इत्यादिना सुहितार्थयोगे षष्ठीसमासनिषेधज्ञापकाद् अत्र षष्ठी इति गोविन्दराजः । **दक्षिणा** अनुकूला, चतुरा,

व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः ।
समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा ॥१६॥

घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः ।
स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः समाल्याकुलमूर्धजाः ॥१७॥

प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः ।
बहुमानाच्च कामाच्च प्रियभार्यास्तमन्वयुः ॥१८॥

स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः ।
सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चितगतिर्बभौ ॥१९॥

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम् ।
शुश्राव परमस्त्रीणां कपिर्मारुतनन्दनः ॥२०॥

स्त्रियः विद्युल्लताः घनमिव वीरं पतिम् अनुजग्मुः ॥१५॥ व्याविद्धहारकेयूराः, समामृदितवर्णकाः, समागलितकेशान्ताः, तथा सस्वेदवदनाः, मदशेषेण निद्रया च घूर्णन्त्यः, स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः, समाल्याकुलमूर्धजाः, मदिरलोचनाः, प्रियभार्याः (ताः) शुभाननाः नार्यः बहुमानात् च कामात् च प्रयान्तं तं नैर्ऋतपतिम् अन्वयुः ॥१६-१८॥ सः च कामपराधीनः, सीतासक्तमनाः, महाबलः (परं) मन्दः तासां पतिः मन्दाञ्चितगतिः (सन्) बभौ ॥१९॥ ततः मारुतनन्दनः कपिः परमस्त्रीणां काञ्चीनिनादं

कर रही थीं, जिस प्रकार विद्युल्लताएँ मेघ का ॥१५॥ अपने स्थान से डिगे हुए हारों और केयूरों वाली, मसले हुए अंगरागों वाली, खुली हुई चोटियों वाली तथा पसीने से युक्त मुखों वाली, मद्यपान के उतरते हुए नशे और निद्रा से लड़खड़ाती हुई, पसीने से व्याकुल अंगरूपी फूलों वाली, मालाओं सहित उलझे हुए केशों वाली, नशा उत्पन्न कर देने वाली आँखों वाली, उसकी प्रिय पत्नियाँ वे सुन्दर मुखों वाली नारियाँ पति के प्रति आदर के कारण और काम के कारण जाते हुए उस राक्षसपति का अनुगमन कर रही थीं ॥१६-१८॥ और वह काम के वश हुआ, सीता में आसक्त मन वाला, महाबली (परन्तु) मन्दमति उनका स्वामी मन्द गति को प्राप्त हुआ शोभायमान हो रहा था ॥१९॥ उसके पश्चात् पवनसुत वानर (हनुमान) ने

निपुणा वा । १६. **व्याविद्धहारकेयूराः** व्याविद्धाः ईषच्चलिताः हाराः केयूराः च यासां ताः । **समामृदितवर्णकाः** सम्यग् आमृदितः मृष्टः वर्णकोऽनुलेपनं यासां ताः । **समागलितकेशान्ताः** प्रस्खलितकेशान्तभागाः। १७. **स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः** स्वेदेन क्लिष्टानि बाधितानि अङ्गकुसुमानि यासां ताः । **समाल्याकुलमूर्धजाः** मालासहिता आकुलाः पर्यस्ताः मूर्धजाः केशाः यासां ताः । १८. **बहुमानात्** भर्तृकृतसंमानात् । १९. **मन्दः**

तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम् ।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः ॥२१॥

दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् ।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥२२॥

कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् ।
समक्षमिव कन्दर्पमपविद्धशरासनम् ॥२३॥

मथितामृतफेनाभमरजोवस्त्रमुत्तमम् ।
सपुष्पमवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे ॥२४॥

च नूपुराणां निःस्वनं च शुश्राव ॥२०॥ अप्रतिमकर्माणम् अचिन्त्यबलपौरुषं च तं (रावणम्) हनुमान् कपिः द्वारदेशम् अनुप्राप्तं ददर्श ॥२१॥ गन्धतैलावसिक्ताभिः अग्रतः ध्रियमाणाभिः अनेकाभिः दीपिकाभिः समन्ताद् अवभासितम्, कामदर्पमदैर्युक्तम्, जिह्मताम्रायतेक्षणम्, अपविद्धशरासनं समक्षं कन्दर्पम् इव, मथितामृतफेनाभम् सपुष्पं विमुक्तम् अङ्गदे सक्तम् उत्तमम् अरजोवस्त्रम् अवकर्षन्तम्, समीपम् उपसंक्रान्त तं

सुन्दर स्त्रियों की तड़ागी की ध्वनि और नूपुरों की आवाज़ को सुना ॥२०॥ अनुपम कर्मों वाले तथा अचिन्त्य बल और पौरुष वाले उस रावण को वानर हनुमान ने द्वार देश पर पहुँचे हुए देखा ॥२१॥ सुगंधित तेल से अवसिक्त आगे-आगे ले जाई जाती हुई अनेक दीपिकाओं से सब ओर से प्रकाशमान, काम दर्प और मद से युक्त, बांके लाल और विशाल नयनों वाले, कुसुमबाण से रहित साक्षात् कामदेव जैसे, तक्र और धारोष्ण दूध के फेन की आभा के समान आभा वाले फूलों की माला से युक्त, अपने स्थान से हटे हुए, बाजूबन्द में अटके हुए उत्तम धुले हुए वस्त्र को खींचकर यथास्थान लाते हुए (और) समीप में पहुँचे हुए

दुर्मतिः । **मन्दाञ्चितगतिः** मन्दाञ्चिता मन्दत्वं प्राप्ता गतिर्यस्य । २२. **गन्धतैलावसिक्ताभिः** गन्धवासिततैलं गन्धतैलं तेन अवसिक्ताभिः । २३. **कामदर्पमदैर्युक्तम्** कामः परद्रव्याद्यपहरणेच्छा दर्पः स्वात्यैश्वर्यजनितगर्वः, मदः तज्जनितानन्दः तैर्युक्तम् 'पराये धन आदि के अपहरण की इच्छा काम कहलाती है, अपने अत्यधिक ऐश्वर्य से उत्पन्न गर्व दर्प कहलाता है, दर्प से उत्पन्न होने वाला आनन्द मद कहलाता है, इन तीनों से युक्त'। **अपविद्धशरासनम्** त्यक्तकुसुमबाणम् । २४. **मथितामृतफेनाभम्** मथितामृतफेनस्य आभा इव आभा यस्य तम् । **मथितं** तक्रम् 'छाछ', अमृतं धारोष्णं 'धारोष्ण दूध', तयोः यत् फेनम् मथितामृतफेनम् 'तक्र में ताज़ा दूध की धारों से उत्पन्न होने वाले झाग'। **विमुक्तम्** विशेषमुक्ताविशिष्टम् स्वस्थानात् प्रचलितं वा। **अवकर्षन्तम्** आकृष्य स्थाने स्थापयन्तम् ।

तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः ।
समीपमुपसङ्क्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे ॥२५॥

अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुञ्जरः ।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥२६॥

ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः ।
तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ॥२७॥

क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः ।
तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ॥२८॥

वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ।
तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ॥२९॥

(रावणं) पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः (हनुमान्) विज्ञातुम् उपचक्रमे ॥२२-२५॥ अवेक्षमाणः कपिकुञ्जरः तु तदा रूपयौवनसम्पन्नाः रावणस्य वरस्त्रियः ददर्श ॥२६॥ ताभिः सुरूपाभिः परिवृतः महायशाः राजा मृगद्विजसंघुष्टं तत् प्रमदावनं प्रविष्टः ॥२७॥ क्षीवः, विचित्राभरणः शङ्कुकर्णः महाबलः विश्रवसः पुत्रः ताराभिः चन्द्रमाः इव परमनारीभिः वृतः सः राक्षसाधिपः तेन (हनुमता) दृष्टः । महातेजाः महाकपिः

उस रावण को पत्तों वाली शाखा में छुपे हुए और सैंकड़ों पत्तों और पुष्पों से ढके हुए (हनुमान्) ने पहचानने का प्रयास किया ॥२२-२५॥ नीचे को निहारते हुए कपिश्रेष्ठ ने उस समय रावण की रूप और यौवन से सम्पन्न श्रेष्ठ स्त्रियों को देखा ॥२६॥ उन सुन्दर रूप वाली स्त्रियों से घिरा हुआ महायशस्वी राजा (रावण) वन्य पशुओं और पक्षियों के घोषों से युक्त उस प्रमदावन में प्रविष्ट हो गया ॥२७॥ नशे में चूर, रंग-बिरंगे आभूषणों वाला, स्तब्ध कानों वाला, महाबली, विश्रवा का पुत्र, तारों द्वारा चन्द्रमा की तरह उत्तम नारियों से घिरा हुआ वह राक्षसों का स्वामी उस (हनुमान्) के द्वारा देखा गया। महातेजस्वी महाकपि ने उस तेजस्वी (रावण)

---

२५. **पत्रपुष्पशतावृतः** पत्राणां पुष्पाणां च शतम्, तेन आवृतः। **पत्रविटपे** पत्रवति विटपे। २६. **कपिकुञ्जरः** कपिषु कुञ्जरः इव, कपिश्रेष्ठः। कुञ्जर शब्द व्याघ्र, पुङ्गव आदि अनेक शब्दों की तरह उत्तरपद में 'अपनी जाति में उत्तम' अर्थ में प्रयुक्त होता है—स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः इत्यमरः ॥ २७. **प्रमदावनम्** प्रमदानां क्रीडार्हं वनं प्रमदावनम् 'प्रमदाओं की क्रीडा के योग्य उद्यान'। २८. **क्षीबः** मत्तः। **शङ्कुकर्णः** गर्वेण

रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः ।
सोऽयमेव पुरा शेते पुरमध्ये गृहोत्तमे ।
अवप्लुतो महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ॥३०॥

स तथाप्युग्रतेजाः स निर्धूतस्तस्य तेजसा ।
पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान् संवृतोऽभवत् ॥३१॥

स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् ।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥३२॥

तेजोवन्तं तं (रावणं) ददर्श ॥२८-२९॥ अयं महाबाहुः रावणः । सोऽयम् (यः) पुरा पुरमध्ये गृहोत्तमे शेते इति संचिन्त्य महातेजाः मारुतात्मजः वानरः हनुमान् अवप्लुतः ॥३०॥ तथा उग्रतेजाः अपि मतिमान् सः (हनुमान्) तस्य तेजसा निर्धूतः पत्रे गुह्यान्तरे सक्तः (सन्) संवृतः अभवत् ॥३१॥ दिदृक्षुः सः रावणः असितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् असितापाङ्गीं तां (सीताम्) उपावर्तत ॥३२॥

को देखा ॥२८-२९॥ 'यह महाबाहु रावण है । यह वही है जो नगर के मध्य में उत्तम भवन में सो रहा था' यह सोचकर महातेजस्वी पवनसुत, वानर हनुमान् कूदकर निचली शाखा पर आ गया ॥३०॥ उस प्रकार उग्रतेज वाला भी वह बुद्धिमान् (हनुमान्) उसके तेज से चलायमान होकर अधिक पत्तों वाली दूसरी शाखा पर आश्रय लेकर छुप गया ॥३१॥ (सीता को) देखने की इच्छा वाला वह रावण काले केशों वाली, सुन्दर श्रोणियों वाली, सटे हुए स्तनों वाली, कृष्ण अपाङ्गों वाली उस सीता के पास आया ॥३२॥

स्तब्धकर्णः । ३०. **गृहोत्तमे** उत्तमे गृहे । **पुरा शेते** यावत्पुरानिपातयोर्लट्—पा० । **अवप्लुतः** अवरूढः 'कूदकर नीचे की शाखाओं पर आ गया । रावण की सब चेष्टाओं को देखने के लिये अपने स्थान से निचली शाखा पर आ गया' । तिलकटीकाकार द्वारा ऊर्ध्वशाखां प्राप्तः आदि अर्थ असंगत है । ३१. **पत्रे** पत्रबहुले अत एव **गुह्यान्तरे** शाखान्तरे 'अधिक पत्तों वाली दूसरी शाखा में' । ३२. **उपावर्तत** समीपं प्राप्तः ।

एकोनविंशः सर्गः

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता ।
रूपयौवनसम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥१॥
ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥२॥
ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥३॥
दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः ।
ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥४॥
असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम् ।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥५॥
मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम् ।

ततः तु तस्मिन्नेव काले अनिन्दिता, वरारोहा, राजपुत्री वैदेही रूपयौवन-सम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितं राक्षसाधिपं रावणं दृष्ट्वा एव प्रवाते कदली यथा प्रावेपत ॥१-२॥ विशालाक्षी रुदती (सा) वरवर्णिनी ऊरुभ्याम् उदरं बाहुभ्यां च पयोधरौ छाद्य उपविष्टा ॥३॥ दशग्रीवः तु राक्षसीगणैः रक्षिताम् अर्णवे सन्नां नावम् इव दीनां दुःखार्तां, छिन्नां भूमौ प्रपतितां वनस्पतेः शाखाम् इव असंवृतायां धरण्याम् आसीनां, संशितव्रताम् मलमण्डनदिग्धाङ्गीम्, मण्डनार्हां (परम्) अमण्डनां वैदेहीं ददर्श ॥४-५½॥

तत्पश्चात् उसी समय निर्दोष, सुन्दर जघनों वाली, राजकुमारी सीता रूप और यौवन से सम्पन्न, उत्तम भूषणों से भूषित, राक्षसों के स्वामी रावण को देखते ही आंधी में केले के पेड़ की तरह कांपने लगी ॥१-२॥ विशाल नेत्रों वाली, रुदन करती हुई वह सुन्दरी (दोनों) उरुवों से उदर को और भुजाओं से स्तनों को ढक कर बैठ गई ॥३॥ दशग्रीव (=रावण) ने तो राक्षसियों से रखवाली की जाती हुई, समुद्र में डूबी हुई नाव की तरह दीन और दुःखी, कटकर भूमि पर गिरी हुई वृक्ष की शाखा की तरह नंगी धरती पर बैठी हुई, तीक्ष्ण व्रत वाली, मलरूपी मण्डन से व्याप्त अंगों वाली, मण्डन के योग्य (परन्तु) मण्डन से हीन सीता को देखा ॥४-५½॥

---

३. छाद्य √छद्+य (ल्यप्) 'ढककर'। धातु से पूर्व उपसर्ग के बिना ल्यप् प्रत्यय का प्रयोग आर्ष है। वरवर्णिनी वरो वर्णो यस्याः सा 'सुन्दर वर्ण वाली'। ४. सन्नाम् मग्नाम्। ५. संशितव्रताम् रावणस्य वधाय तीव्रं व्रतम् इव कुर्वाणाम्। ६ मलमण्डनदिग्धाङ्गीम् मलमण्डनेन मलरूपभूषणेन दिग्धानि व्याप्तानि अङ्गानि यस्याः ताम् 'मलरूपी भूषण से व्याप्त अंगों वाली को'। तीर्थ का पाठ

मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥६॥
समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः ।
संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥७॥
शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् ।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥८॥
चेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ॥९॥
वृत्तशीले कुले जातामाचारवति धार्मिके ।
पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले ॥१०॥
सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम् ।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ॥११॥

पङ्कदिग्धा मृणाली इव (सा) विभाति न विभाति च ॥६॥ सङ्कल्पहयसंयुक्तैः मनोरथैः विदितात्मनः राजसिंहस्य रामस्य समीपं यान्तीम् इव, शुष्यन्तीम्, रुदतीम्, एकाम्, ध्यानशोकपरायणाम्, दुःखस्य अन्तम् अपश्यन्तीम्, रामम् अनुव्रतां, रामाम्, अथ आविष्टां चेष्टमानाम् पन्नगेन्द्रवधूम् इव, धूमकेतुना ग्रहेण धूप्यमानां रोहिणीम् इव, आचारवति धार्मिके वृत्तशीले कुले जाताम्, संस्कारम् आपन्नाम् च दुष्कुले पुनर्जाताम् इव, सन्नां महाकीर्तिम् इव, विमानितां श्रद्धाम् इव, परिक्षीणां प्रज्ञाम्

कीचड़ से लिप्त बिस की तरह (वह) सुशोभित भी हो रही थी और नहीं भी ॥६॥ सङ्कल्परूपी अश्वों से जुते हुए मन के रथों से आत्मज्ञ, राजाओं में सिंह के समान राम के पास जाती हुई सी, सूखी जा रही, रुदन करती हुई, अकेली, ध्यान और शोक से युक्त, दुःख के अन्त को न देखती हुई, राम की अनुगामिनी, मन को लुभाने वाली, और मन्त्र आदि से वश में की हुई छटपटाती हुई सर्पिणी सी, धूएं के वर्ण वाले केतु-ग्रह के द्वारा संतप्त की जाती हुई रोहिणी सी, आचारवान् धार्मिक सद्वृत्त और सुशील (राजा जनक के) कुल में उत्पन्न और (वैसे ही ऊँचे रघुकुल में) विवाह संस्कार को प्राप्त हुई (परन्तु अपहरण के कारण राक्षसों के) दुष्टकुल में पुनर्जन्म को प्राप्त हुई सी, क्षीण हुई महाकीर्त्ति सी, अवमानिता श्रद्धा सी, परिक्षीण प्रज्ञा सी, नष्ट हुई आशा सी, विध्वस्त हुए धनागम सी, न मानी हुई आज्ञा

'मलमण्डनचित्राङ्गीम्' है । ७. सङ्कल्पहयसंयुक्तैः सङ्कल्परूपहयाः अश्वाः तैः संयुक्तैः युक्तैः मनोरथैः मनसः रथैः । ९. आविष्टाम् मन्त्राद्यवरुद्धाम् 'मन्त्र आदि से अवरुद्ध'। धूप्यमानाम् संताप्यमानाम् । धूमकेतुना धूमवर्णेन केतुना । १०. वृत्तशीले वृत्तम् आचारः शीलं सत्स्वभावः तद्युते । संस्कारमापन्नाम् पाणिग्रहणसंस्कारं प्राप्ताम् । स्मृतियों के अनुसार कुमारों के उपनयन की तरह कुमारियों का विवाह ही उनका दूसरा जन्म माना गया है । ११. सन्ना क्षीणा । १२. आयती धनादिप्राप्तिः ।

आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव ।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहृतामिव ॥१२॥
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम् ।
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥१३॥
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम् ।
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ॥१४॥
उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम् ।
हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलामिव पद्मिनीम् ॥१५॥
पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥१६॥
सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् ।
तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् ॥१७॥

इव, प्रतिहताम् आशाम् इव, विध्वस्ताम् आयतीम् इव, प्रतिहताम् आज्ञाम् इव, काले दीप्तां दिशम् इव, अपहृतां पूजाम् इव तमोग्रस्तेन्दुमण्डलां पौर्णमासीं निशाम् इव, विध्वस्तां पद्मिनीम् इव, हतशूरां चमूम् इव, तमोध्वस्तां प्रभाम् इव, उपक्षीणाम् आपगाम् इव, परामृष्टां वेदीम् इव, शान्ताम् अग्निशिखाम् इव, हस्तिहस्तपरामृष्टाम् (अत एव) उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम् आकुलां पद्मिनीम् इव, विस्राविताम् (अत एव) शुष्कां नदीम् इव, पतिशोकातुराम्, परया मृजया हीनाम् (अत एव) कृष्णपक्षे निशाम् इव, सुकुमारीं, सुजाताङ्गीं, रत्नगर्भगृहोचितां, अचिरोद्-

---

सी, उत्पातकाल में प्रज्वलित दिशा सी, नष्ट हुई पूजासामग्री सी, राहु से ग्रस्त चन्द्रमण्डल वाली पौर्णमासी की रात्रि सी, नष्ट हुई कमलिनी सी, मृत्यु को प्राप्त हुए शूरों वाली सेना सी, अन्धकार से नष्ट रविप्रभा सी, सूखी हुई नदी सी, चाण्डाल आदि से स्पृष्ट वेदी सी, बुझी हुई अग्नि की शिखा सी, हाथी की सूंड से आहत और इसीलिये टूटे हुए पत्तों और कमलों वाली और डरे हुए पक्षियों वाली क्षुब्ध कमल-सरसी सी, उलीचे हुए पानी वाली सूखी नदी की तरह, पतिवियोग के शोक से पीड़ित, उत्तम चन्दनलेप आदि से हीन (और इसी लिये) कृष्णपक्ष की रात्रि सी, कोमल शरीर वाली, सुन्दर अंगों वाली, रत्नों से युक्त गर्भगृह में निवास के योग्य, अभी अभी (धरती से) उखाड़ी हुई पर गरमी से तपाई जाती हुई मृणाली

काले उत्पातकाले । पूजाम् पूजाद्रव्यम् । १३. **तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम्** तमसा राहुणा ग्रस्तम् इन्दुमण्डलं यस्यां ताम् । १४. **प्रभाम्** सूर्यप्रकाशम् । **परामृष्टाम्** चाण्डालेन स्पृष्टाम् । १५. **उत्कृष्टपर्णकमलाम्** उत्कृष्टानि परिध्वस्तानि पर्णानि कमलानि च यस्याः ताम् । **वित्रासितविहङ्गमाम्** वित्रासिताः विहङ्गमा यस्यां ताम् । **आकुलाम्** कलुषीकृताम् । **पद्मिनीम्** सरसीम् । १६. **विस्राविताम्** रोधोभङ्गादिनाऽन्यतः प्रापित-जलाम् । मृजया अङ्गशुद्ध्या । १७. **सुजाताङ्गीम्** सुन्दराङ्गीम् । १८. **लाडिताम्**

गृहीतां लाडितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् ।
निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥१८॥
एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥१९॥
उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥२०॥
आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव ।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् ॥२१॥
समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां
सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं
प्रलोभयामास वधाय रावणः ॥२२॥

धृताम् उष्णेन तप्यमानां मृणालीम् इव, गृहीतां स्तम्भे लाडितां यूथपेन विनाकृतां निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूम् इव, नीरदापाये नीलया वनराज्या (शोभमानां) महीम् इव एकया दीर्घया वेण्या अयत्नतः शोभमानाम्, उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च परिक्षीणां कृशां दीनाम्, अल्पाहाराम्, तपोधनाम्, भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवताम् इव, सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ल-लोचनां समीक्षमाणां, रुदतीम्, अनिन्दिताम्, रामम् अतीव अनुव्रतां मैथिलीं रावणः वधाय प्रलोभयामास ॥७-२२॥

(कमल की जड़, बिस) के समान, पकड़ कर खम्भे पर बांधी हुई झुंड से बिछुड़ी हुई उसासें भरती हुई अत्यन्त दुःखी हथिनी सी, शरत्काल में नीली वनराजि से सुशोभित पृथिवी की तरह एक मात्र लम्बी वेणी से विना प्रयास के शोभायमान, उपवास से शोक से ध्यान से और भय से अत्यन्त क्षीण, कृश और दीन, स्वल्प आहार वाली, तप मात्र के धन वाली, मन से रघुओं में श्रेष्ठ (राम) के द्वारा दशग्रीव (रावण) के पराजय की याचना करती हुई, दुःख से पीडित करबद्ध देवता सी, सुन्दर पलकों वाले लाल विशाल और (रोदन के कारण) श्वेत लोचनों वाली, (राम को) ढूंढती हुई, रुदन करती हुई, अनिन्दित, राम में अत्यन्त भक्ति रखने वाली सीता को रावण (अपने) वध के लिए प्रलोभन देने लगा ॥७-२२॥

बद्धाम् । गोविन्दराज ने आलिताम् पाठ दिया है और इसका अर्थ आलानिताम् 'बांधी हुई' किया है । १९. नीरदापाये मेघानाम् अपगते शरत्काले । २१. भावेन मनसा । रघुमुख्यस्य सकाशाद् इति शेषः । प्राञ्जलिम् कृतनमस्काराम् । २२. समीक्षमाणाम् इतस्ततः रामम् अवलोकयन्तीम् । सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् सुपक्ष्मणी ताम्रे आयते शुक्ले रोदनेन शुक्लत्वम् आपन्ने लोचने यस्याः ताम् । प्रलोभयामास वञ्चनावचनम् उच्चारयामास ॥

विंशः सर्गः

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥१॥
मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥२॥
कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वाङ्गगुणसंपन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥३॥
नेह किञ्चिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः ।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥४॥
स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥५॥

सः रावणः परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीं तां (सीताम्) साकारैः मधुरैः वाक्यैः न्यदर्शयत ॥१॥ नागनासोरु! (त्वं) मां दृष्ट्वा भयात् स्तनोदरं गूहमाना आत्मानम् अदर्शनम् इव नेतुम् इच्छसि ॥२॥ विशालाक्षि ! सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने ! सर्वलोकमनोहरे ! (अहं) त्वां कामये, प्रिये (त्वं) मां बहु मन्यस्व ॥३॥ मनुष्याः कामरूपिणः राक्षसाः (अन्यत्) किञ्चिद् वा इह न, (अतः) सीते ! (तेभ्यः) मत्तः (च) समुत्थितं ते भयं व्यपसर्पतु ॥४॥ परस्त्रीणां गमनं वा संप्रमथ्य हरणं वा, भीरु ! सर्वदैव रक्षसां

वह रावण (राक्षसियों से) घिरी हुई दीन दुःखी तपस्विनी उस (सीता) को अभिप्राय से युक्त मधुर वाक्यों से (अपना अभिप्राय) प्रकट करने लगा ॥१॥ हे हाथी की सूंड के समान उरुओं वाली ! तू मुझे देखकर भय से स्तनों और उदर को छुपाती हुई अपने को अदृष्ट सा कर लेना चाहती है ॥२॥ हे विशाल नेत्रों वाली ! अंगों के सभी गुणों से सम्पन्न ! समस्त लोक के मन को हरने वाली ! मैं तुझे चाहता हूँ। प्रिये ! तू मुझे सम्मानित कर ॥३॥ मनुष्य, इच्छानुसार रूप धारण कर लेने वाले राक्षस, अथवा कोई अन्य वस्तु यहाँ नहीं है, (इसलिये) हे सीते ! (उनसे) और मुझसे उत्पन्न हुआ तेरा भय दूर हो जाना चाहिये ॥४॥ परस्त्रीगमन अथवा बलात् अपहरण, हे भीरु! सदा ही राक्षसों का अपना धर्म रहा है, इसमें संशय

---

१. परिवृतां राक्षसीभिर् इति शेषः । साकारैः साभिप्रायैः, आकारस्त्विङ्गिताकृती इत्यमरः । न्यदर्शयत प्रकाशितवान् । ३. सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वैः अङ्गानां गुणैः सम्पन्ने (सम्बो०) । ५. संप्रमथ्य बलात्कृत्य । ६. एवं च एवम् बलात्कारपक्षे तव मम

एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि ।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥६॥
देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये ।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥७॥
एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् ।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥८॥
विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगुरूणि च ।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥९॥
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥१०॥
स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥११॥

स्वधर्मः (इति) न संशयः । एवं च एवं, मैथिलि ! अकामां त्वां न स्प्रक्ष्यामि, कामं कामः मे शरीरे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥५-६॥ देवि ! इह भयं न कार्यम् । प्रिये ! मयि विश्वसिहि, तत्त्वेन प्रणयस्व, एवं शोकलालसा च मा भूः ॥७॥ एकवेणी, अधःशय्या, ध्यानम्, मलिनम् अम्बरम्, अस्थाने उपवासः चापि, एतानि ते औपयिकानि न ॥८॥ मैथिलि ! विचित्राणि माल्यानि च, चन्दनानि (च), अगुरूणि च, विविधानि वासांसि च, दिव्यानि आभरणानि च, महार्हाणि पानानि च, शयनानि (च), आसनानि च, गीतं (च), नृत्यं च, वाद्यं च मां प्राप्य लभ ॥९-१०॥ स्त्रीरत्नम् असि, एवं मा भूः, गात्रेषु भूषणं कुरु । सुविग्रहे ! मां प्राप्य हि त्वं कथं वा (भूषणानाम्)

नहीं । यह सत्य होते हुए भी, हे मैथिली, तुझ अकामा को मैं स्पर्श नहीं करूँगा, भले ही कामदेव मेरे शरीर में इच्छानुसार प्रवृत्त हो ॥५-६॥ हे देवी, यहाँ डरिये मत । हे प्रिये ! मुझ पर विश्वास कर, मुझ से सच्चा प्यार कर, और इस प्रकार शोकसंतप्त मत हो ॥७॥ एक वेणी धारण करना, धरती पर सोना, ध्यानमग्न होना, मैले वस्त्र धारण करना और अस्थान में उपवास ये तेरे लिये उचित नहीं है ॥८॥ हे मैथिली ! रंग-बिरंगी मालाओं, चन्दन, अगुरु, विविध वस्त्रों, दिव्य आभूषणों, बहुमूल्य मदिराओं, शयनों, आसनों, गीत, नृत्य और वाद्य को मुझे अपना बनाकर प्राप्त करो ॥९-१०॥ तू नारियों में रत्न है, इस प्रकार (शोकसंतप्त) मत हो, अंगों पर भूषण धारण कर। हे सुन्दर शरीर वाली ! मुझे अपनाकर तू कैसे

च दोषाभावेऽपि । यथाकामं कामम् अनतिक्रम्य । ७. प्रणयस्व प्र √नी, लोट्, म० पु०, ए० व०, संमानन अर्थ में आत्मनेपदम् । शोकलालसा शोकव्याप्ता । ८. अधःशय्या भूशयनम् । औपयिकानि युक्तानि, युक्तमौपयिकमित्यमरः । १०. लभ लभस्व, आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग आर्ष है । ११. अनर्हा भूषणानाम् इति

इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते ।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥१२॥
त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत् ।
नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥१३॥
त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम् ।
कः पुनर्नातिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥१४॥
यद् यत् पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने ।
तस्मिंस्तस्मिन् पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते ॥१५॥
भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥१६॥
लोकेभ्यो यानि रत्नानि सम्प्रमथ्याहृतानि मे ।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥१७॥

अनर्हा स्याः ॥११॥ इदं ते चारुसंजातं यौवनं हि अतिवर्तते । यद् अतीतम् (तव) स्रोतस्विनां स्रोतः इव पुनर् न ऐति ॥१२॥ मन्ये रूपकर्ता सः विश्वकृत् त्वां कृत्वा उपरतः । (अतः एव) शुभदर्शने ! अन्या तव रूपोपमा नहि अस्ति ॥१३॥ वैदेहि ! रूपयौवनशालिनीं त्वां समासाद्य कः पुनर् नातिवर्तेत, साक्षात् पितामहः अपि (अति-वर्तेत) ॥१४॥ शीतांशुसदृशानने ! यद् यत् ते गात्रं पश्यामि, पृथुश्रोणि ! तस्मिन् तस्मिन् मम चक्षुः निबध्यते ॥१५॥ मैथिलि ! भार्या मे भव, एतं मोहं विसर्जय । बह्वीनां मम उत्तमस्त्रीणाम् अग्रमहिषी भव ॥१६॥ लोकेभ्यः संप्रमथ्य आहृतानि यानि मे रत्नानि, भीरु ! तानि सर्वाणि ते (सन्ति), राज्यं चैव ते ददामि ॥१७॥

(भूषणों के) अयोग्य हो सकती है ॥११॥ यह तेरा सौन्दर्य से सम्पन्न यौवन बीत रहा है। जो बीत जाता है (वह) नदियों के प्रवाह की तरह वापस नहीं आता ॥१२॥ मैं समझता हूँ कि रूप का निर्माण करने वाला वह ब्रह्मा तुझे बनाकर निवृत्त हो गया। (इसीलिये) हे सुन्दर दर्शन वाली, तेरे रूप की अन्य कोई उपमा नहीं है ॥१३॥ हे जानकी ! रूप और यौवन से शोभायमान तुझे पाकर कौन है जो क्षुभित न हो जाए, साक्षात् ब्रह्मा भी क्षुभित हो जाएगा ॥१४॥ हे चन्द्रमुखी, मैं तेरे जिस-जिस अंग को देखता हूँ, हे पृथुजघने ! उस-उस पर ही मेरी दृष्टि टिकी रह जाती है ॥१५॥ हे मैथिली ! मेरी पत्नी बन जा, इस नादानी को छोड़ दे। मेरी असंख्य श्रेष्ठ स्त्रियों की पटरानी बन जा ॥१६॥ लोकों से बलात् छीनकर लाए हुए जितने भी मेरे पास रत्न हैं, हे भीरु ! वे सब तेरे हैं, मैं राज्य भी तुझे ही देता हूँ ॥१७॥

शेषः । सुविग्रहे ! इति सम्बुद्धिः । १२. अतिवर्तते अतिक्रम्य गच्छति । **स्रोतस्विनाम्** जलप्रवाहाणाम् । १३. **उपरतः** निवृत्तः । १४. **अतिवर्तेत** क्षुभ्येत । १६. **मोहम्** नैत-द्दशा भविष्यामीति बुद्धिम् । १७. **संप्रमथ्य** रिपून् जित्वा । १८. **तव हेतोः** तव प्रीत्यर्थम्

विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम् ।
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥१८॥
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत् ।
पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१९॥
असकृत् संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः ।
अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ॥२०॥
इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् ।
सुप्रभाण्यवसज्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि हि ॥२१॥
साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा ।
प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ॥२२॥
भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥२३॥

विलासिनि ! तव हेतोः नानानगरमालिनीं सर्वां पृथिवीं विजित्य जनकाय प्रदास्यामि ॥१८॥ इह लोके अन्यं न पश्यामि यः मे प्रतिबलः भवेत् । आहवे अप्रतिद्वन्द्वं सुमहद् मे वीर्यं पश्य ॥१९॥ संयुगे मया असकृत् भग्नाः, विमृदितध्वजाः, सुरासुराः मम प्रत्यनीकेषु स्थातुम् अशक्ताः ॥२०॥ माम् इच्छ । अद्य तव उत्तमं प्रतिकर्म क्रियताम्। सुप्रभाणि भूषणानि हि तव अङ्गे अवसज्जन्ताम् ॥२१॥ प्रतिकर्मणा सुयुक्तं ते रूपं साधु पश्यामि, वरानने ! दाक्षिण्येन प्रतिकर्माभिसंयुक्ता (भव) ॥२२॥ भीरु ! यथाकामं भोगान् भुङ्क्ष्व, पिब, रमस्व च । पृथिवीं वा धनानि च त्वं यथेष्टं प्रयच्छ ॥२३॥

हे विलासिनी! तेरे निमित्त नाना नगर रूपी मालाओं वाली सारी पृथिवी को जीतकर मैं जनक को दे दूँगा ॥१८॥ इस लोक में मुझे अन्य कोई दिखाई नहीं देता जो मेरे जोड़ का हो। तू युद्ध में मेरी बेजोड़ और महान् वीरता को देख ॥१९॥ युद्ध में मेरे द्वारा अनेक बार भगाए हुए, टूटे हुए ध्वजों वाले, सुर और असुर मेरे प्रतिद्वन्द्वी शत्रुओं के रूप में ठहरने में असमर्थ हैं ॥२०॥ मुझे प्यार कर। आज तेरा उत्तम शृङ्गार किया जाए। सुन्दर चमक वाले गहने ही तेरे शरीर पर पहनाए जाएँ ॥२१॥ शृंगार से युक्त तेरे शरीर को मैं भली प्रकार देखूँ। हे सुन्दर शरीर वाली ! निपुणता से शृंगार कर ले ॥२२॥ हे भीरु ! यथेष्ट भोगों को भोग, मदिरा पान कर और मेरे

निमित्तप्रायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्—वा० । १९. प्रतिबलः युद्धे जेता, प्रतिद्वन्द्वः । २०. संयुगे युद्धे । भग्नाः √भज् (भञ्ज्)+क्त, प्रथमा, ब० व० । भज्, नश् आदि धातुओं का अर्थ 'अंगभंग होना' के अतिरिक्त 'भागना' भी है जोकि भागना, भाजना, नठना आदि भारतीय आर्य भाषाओं की क्रियाओं से स्पष्ट है । २१. प्रतिकर्म अलंकारः 'प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः । २२. पश्यामि पश्येयम् । २३. भुङ्क्ष्व √भुज्, लोट्,

ललस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च ।
मत्प्रसादाल्ललन्त्याश्च ललतां बान्धवस्तव ॥२४॥
ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशस्विनि ।
किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवासिना ॥२५॥
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः ।
व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥२६॥
नहि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते ।
पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥२७॥
न चापि मम हस्तात् त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः ।
हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ॥२८॥

विस्रब्धा मयि ललस्व धृष्टम् आज्ञापयस्व च, मत्प्रसादात् च ललन्त्याः तव बान्धवः ललताम् ॥२४॥ भद्रे ! यशस्विनि ! त्वं मम ऋद्धिं श्रियं (च) अनुपश्य । सुभगे ! चीरवासिना रामेण किं करिष्यसि ॥२५॥ रामः निक्षिप्तविजयः, गतश्रीः, वनगोचरः, व्रती स्थण्डिलशायी च (अस्ति), शङ्के (सः) जीवति वा न वा ॥२६॥ वैदेहि ! पुरोबलाकैः असितैः मेघैः आवृतां ज्योत्स्नाम् इव वा रामः त्वां द्रष्टुम् अपि नहि उपलभ्यते ॥२७॥ हिरण्यकशिपुः इन्द्रहस्तगतां कीर्तिम् इव राघवः चापि त्वां मम हस्तात्

साथ रमण कर। धरती और धनों को तू इच्छानुसार दान में दे ॥२३॥ निस्संकोच होकर मुझ से लाडकर और दृढ़ता से हुकम चला, मुझ पर कृपा होने से तुझ क्रीड़ा करती हुई के बान्धवजन भी जीवन का आनन्द लें ॥२४॥ हे भद्रे ! हे यशस्विनी! तू मेरी समृद्धि और लक्ष्मी को देख। हे सुन्दरी ! चीरवासी राम का क्या करेगी ॥२५॥ राम विजयरहित, शोभाहीन, वन में घूमने वाला, (तपस्वियों का सा) व्रत धारण करने वाला और धरती पर सोने वाला है, मुझे तो डर है वह जीवित भी है या नहीं ॥२६॥ आगे आगे उड़ते हुए बगुलों वाले काले मेघों से आच्छादित चान्दनी की तरह तू राम को देखने को भी नहीं मिलेगी ॥२७॥ जिस प्रकार हिरण्यकशिपु इन्द्र के हाथ लगी हुई अपनी कीर्तिरूपी भार्या को नहीं पा सका था उसी प्रकार राघव

म० पु०, ए० व०। भुज् धातु 'भोगना' अर्थ में आत्मनेपदी और 'पालन करना' में परस्मैपदी है। २४. ललस्व ईप्सां कुरु, प्रीतिं कुरु इति गोविन्दराजः। "लल ईप्सायाम्" इति धातुः। सं० 'ललना' और हिन्दी 'लाड करना' लल् धातु से ही बने हैं। २५. ऋद्धिम् पराक्रमादिसंपदम्। श्रियं धनादिसंपदम्। चीरवासिना चीराच्छादितेन। २६. निक्षिप्तविजयः त्यक्तविजयः। वनगोचरः वनचरः। गो शब्द अनेक समस्त शब्दों में निरर्थक हो गया है। स्थण्डिलशायी भूतलशायी। २७. पुरोबलाकैः पुरः अग्रे बलाकाः येषां ते। २८. कीर्तिं कीर्तितुल्यां भार्याम्। ३०. स्वेषु दारेषु मन्दोदर्याम्

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि ।
मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ॥२९॥

क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलङ्कृताम् ।
त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ॥३०॥

अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः ।
यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ॥३१॥

मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरस्त्रियः ।
तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ॥३२॥

यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च ।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥३३॥

प्राप्तुं न अर्हति ॥२८॥ चारुस्मिते ! चारुदति ! चारुनेत्रे ! विलासिनि ! भीरु ! सुपर्णः पन्नगं यथा (त्वं) मे मनः हरसि ॥२९॥ क्लिष्टकौशेयवसनाम् अनलंकृतां तन्वीम् अपि त्वां दृष्ट्वा अहं स्वेषु दारेषु रतिं न उपलभामि ॥३०॥ अन्तःपुरनिवासिन्यः सर्वगुणान्विताः यावत्यः मम स्त्रियः (सन्ति), जानकि ! सर्वासाम् (तासाम्) ऐश्वर्यं कुरु ॥३१॥ असितकेशान्ते ! ताः मम त्रैलोक्यप्रवरस्त्रियः हि अप्सरसो श्रियं यथा त्वाम् परिचरिष्यन्ति ॥३२॥ सुभ्रु ! वैश्रवणे यानि रत्नानि च धनानि च (सन्ति), सुश्रोणि ! तानि (सर्वाणि). लोकान् च मया (सह) यथासुखं भुङ्क्ष्व ॥३३॥ देवी ! रामः न तपसा, न बलेन, (न) च विक्रमैः, न धनेन तेजसा यशसा अपि वा

भी तुझे मेरे हाथ से प्राप्त नहीं कर सकता ॥२८॥ हे सुन्दर मुस्कान वाली ! सुन्दर दांतों वाली ! सुन्दर नेत्रों वाली ! विलासिनी ! भीरु ! जिस प्रकार गरुड़ नाग को उठा ले जाता है उसी प्रकार तू मेरे मन को हर रही है ॥२९॥ कठोर रेशमी कपड़ों वाली ! आभूषणहीन और कृश हुई भी तुझे देखकर मेरी अपनी पत्नी (मन्दोदरी) में रति नहीं हो रही है ॥३०॥ अन्तःपुर में वास करने वाली, सब गुणों से युक्त, जितनी मेरी स्त्रियाँ हैं, हे जानकी ! तू सबकी स्वामिनी बन ॥३१॥ हे काले केशों वाली ! वे तीनों लोकों में श्रेष्ठ मेरी स्त्रियाँ तेरी इस प्रकार सेवा करेंगी जिस प्रकार अप्सराएँ लक्ष्मी की करती हैं ॥३२॥ हे सुन्दर भ्रुवों वाली ! कुबेर के पास जितने भी रत्न और धन हैं, हे सुजघने ! उन सबको और सब लोकों को मेरे साथ सुखपूर्वक भोग ॥३३॥ हे देवी ! राम न तो तप में, न बल में, न विक्रम में, न ही धन तेज और यश में मेरे तुल्य है ॥३४॥

अपि । दार शब्द पुं० और ब० व० है । मूल में 'बाल' अर्थवाची यह शब्द 'पत्नी' अर्थ में रूढ हो गया है । नोपलभामि न प्राप्नोमि, पदव्यत्यय आर्ष है । ३१. ऐश्वर्यम् ईश्वरस्य भावः, प्रभुत्वम् । ३३. वैश्रवणे कुबेरे, कुबेरस्य 'कुबेर के पास' । ३४. तपसा,

न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः ।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ॥३४॥

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्
धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च ।
मयि लल ललने यथासुखं त्वं
त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ॥३५॥

कुसुमिततरुजालसन्ततानि
भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि ।
कनकविमलहारभूषिताङ्गी
विहर मया सह भीरु काननानि ॥३६॥

मया तुल्यः ॥३४॥ पिब, विहर, रमस्व, भोगान् भुङ्क्ष्व, धननिचयं प्रदिश, मेदिनीं च अभिप्रदिश । ललने ! मयि यथासुखं लल, त्वयि च समेत्य ते बान्धवाः ललन्तु ॥३५॥ भीरु ! कनकविमलहारभूषिताङ्गी (त्वं) मया सह कुसुमिततरुजालसंततानि, भ्रमरयुतानि, समुद्रतीरजानि काननानि विहर ॥३६॥

मदिरा-पान कर, विहार कर, मेरे साथ रमण कर, भोगों के भोग, धनों के ढेर को दान में दे दे, और पृथिवी को दान में दे दे । हे ललने, मेरे साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा कर, और तेरे साथ मिलकर तेरे बान्धव भी जीवन का आनन्द लें ॥३५॥ हे भीरु ! सोने के स्वच्छ हार से भूषित अंगों वाली (तू) मेरे साथ, फूले हुए वृक्षों के समूहों से भरे हुए, भ्रमरों से युक्त, समुद्र के तट पर उगे हुए वनों में विहार कर ॥३६॥

बलेन, विक्रमैः आदि शब्दों में अतिशय अर्थ में तृतीया का प्रयोग दर्शनीय है । मया तुल्यः मया सदृशः, तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्—पा० २।३।७२ से तृतीया, पक्ष में षष्ठी भी हो सकती है । ३५. **प्रदिश** देहि । **अभि** अभितः । ३६. **कुसुमिततरुजालसंततानि** कुसुमितैः तरुजालैः सन्ततानि व्याप्तानि ।

एकविंशः सर्गः

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः ॥१॥
दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥२॥
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ॥३॥
न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥४॥
कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया ।
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ॥५॥

ततः रौद्रस्य तस्य रक्षसः तद् वचनं श्रुत्वा आर्ता दीनस्वरा सीता शनैः दीनं प्रत्युवाच ॥१॥ पतिम् एव चिन्तयन्ती पतिव्रता, वरारोहा, शुचिस्मिता, तपस्विनी, दुःखार्ता, रुदती, वेपमाना सीता तृणम् अन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच ॥२-३॥ मत्तः मनः निवर्तय, स्वजने मनः प्रीयताम् । पापकृत् सिद्धिम् इव त्वं मां प्रार्थयितुं न युक्तः । महति कुले जातया, पुण्यं कुलं संप्राप्तया एकपत्न्या मया विगर्हितम् अकार्यं न कार्यम् ॥३-५॥

तब उस भयंकर राक्षस के उस वचन को सुनकर आर्त और धीमे स्वर वाली सीता धीरे धीरे दीनतापूर्वक उत्तर देने लगी ॥१॥ पति का ही चिन्तन करने वाली पतिव्रता, सुन्दर उरुवों वाली, निष्कपट मुस्कान वाली, तपस्विनी, दुःखार्ता, रुदन करती हुई, कांपती हुई सीता ने तिनके को बीच में करके कहा ॥२-३॥ मुझसे मन हटा ले, अपनी भार्या में प्रीति कर। जिस प्रकार पापी सिद्धि की कामना नहीं कर सकता उसी प्रकार तेरे लिये मेरी इच्छा करना उचित नहीं है। महान् कुल में जन्म लेने वाली (और विवाह के द्वारा) पुण्य कुल में पहुँची हुई

---

१. दीनं क्रियाविशेषणम् । ३. अन्तरतः कृत्वा मध्ये कृत्वा । परपुरुष के साथ बात करते समय बीच में किसी बालक, वृक्ष के पत्ते या घास के तिनके को लेकर बोलने की प्राचीन भारतीय स्त्रियों की परम्परा किन्हीं प्रदेशों में अभी तक प्रचलित है। स्वजनः भार्यादिः । प्रीयताम् √प्री प्रीतौ, लोट्, म० पु०, ए० व०, प्रीतिं कुरु । इस पद्य में क्रोधोक्ति होने से मनः शब्द की पुनरुक्ति सदोष नहीं समझनी चाहिये । ४. सिद्धिम् ब्रह्मलोकप्राप्तिम् । एकपत्न्या, एकः पतिः यस्याः सा एकपत्नी

रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत् ।
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ॥६॥
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर ।
यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ॥७॥
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम् ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥८॥
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे ।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥९॥
वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः ।
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥१०॥

यशस्विनी वैदेही तु तं रावणम् एवम् उक्त्वा रावणं पृष्ठतः कृत्वा (च) भूयः वचनम् अब्रवीत् ॥५-६॥ सती परभार्या अहं तव औपयिकी भार्या न । धर्मं साधु अवेक्षस्व, साधु साधुव्रतं चर । निशाचर ! यथा तव तथा अन्येषां दाराः रक्ष्याः । आत्मानम् उपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् । परदाराः स्वेषु दारेषु अतुष्टं, चपलम्, चपलेन्द्रियम्, निकृतिप्रज्ञं पराभवं नयन्ति ॥६-८॥ इह सन्तो वा न सन्ति, (त्वं) वा सतः नानुवर्तसे, यथा हि ते बुद्धिः विपरीता आचारवर्जिता (च) ॥९॥ मिथ्याप्रणीतात्मा त्वं वा विचक्षणैः उक्तं पथ्यं वचः राक्षसानाम् अभावाय न प्रतिपद्यसे ॥१०॥ अकृतात्मा-

---

मुझ पतिव्रता को यह निन्दित, न करने योग्य, कार्य नहीं करना है ॥३-५॥ यशस्विनी सीता तो उस रावण को इस प्रकार कह कर और रावण की ओर पीठ करके फिर से (यह) वचन बोली ॥५-६॥ मैं सती और परस्त्री हूँ, तेरी भार्या बनने के योग्य नहीं हूं । तू धर्म का भली प्रकार से विचार कर (और) सम्यक् रूप से सदाचार का आचरण कर । हे राक्षस! जिस प्रकार अपनी स्त्रियों की उसी प्रकार दूसरों की (स्त्रियों की) भी (तुझे) रक्षा करनी चाहिये । अपने को उपमान (आदर्श) बना कर अपनी स्त्री में रमण कर । परस्त्री अपनी स्त्री में सन्तुष्ट न रहने वाले, चपल, चञ्चल इन्द्रियों वाले, दुष्ट-बुद्धि जन को नीचा दिखा देती है ॥६-८॥ या तो यहाँ (लंका में) सज्जन हैं नहीं, अथवा तू सज्जनों की बात नहीं मानता, क्योंकि तेरी बुद्धि विपरीत और आचारहीन है ॥९॥ अथवा मिथ्या बातों में मन को लगाने वाला तू विवेकी जनों द्वारा कहे हुए हितकारी वचन को राक्षसों के विनाश के लिये

तया, "नित्यं सपत्न्यादिषु" इति ङीप्, पतिव्रतया । ६. **पृष्ठतः कृत्वा** परावृत्य स्थित्वा । **औपयिकी** उपभोगयोग्या । ८. **उपमाम्** उपमानम् । **निकृतिप्रज्ञम्** निकृता सद्भिर्धिक्कृता प्रज्ञा बुद्धिर्यस्य तम्, निकृतौ शाठ्ये प्रज्ञा यस्य तम् इति गोविन्दराजः । १०. **मिथ्याप्रणीतात्मा** मिथ्या असद्वस्तुषु प्रणीतः प्राप्तः आत्मा मनो यस्य । **विचक्षणैः**

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥११॥
तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसंकुला ।
अपराधात् तवैकस्य नचिराद् विनशिष्यति ॥१२॥
स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः ।
अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ॥१३॥
एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः ।
दिष्ट्यैतद् व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ॥१४॥
शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥१५॥
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥१६॥

नम् अनये रतं राजानम् आसाद्य समृद्धानि राष्ट्राणि नगराणि च विनश्यन्ति ॥११॥ तथा एव रत्नौघसङ्कुला लङ्का त्वां समासाद्य तव एकस्य अपराधात् नचिराद् विनशिष्यति ॥१२॥ रावण ! स्वकृतैः हन्यमानस्य अदीर्घदर्शिनः पापकर्मणः विनाशे भूतानि अभिनन्दन्ति ॥१३॥ निकृताः जनाः पापकर्माणं त्वाम् हर्षिताः (सन्तः) एवं वक्ष्यन्ति—दिष्ट्या रौद्रः (एष रावणः) एतद् व्यसनं प्राप्तः इति ॥१४॥ भास्करेण प्रभा यथा राघवेण अनन्या अहम् ऐश्वर्येण धनेन वा लोभयितुं न शक्या ॥१५॥ तस्य लोकनाथस्य सत्कृतं भुजम् उपधाय अन्यस्य कस्यचिद् भुजं कथं नाम उपधा-

---

स्वीकार नहीं करता है ॥१०॥ सदुपदेश को ग्रहण न करने वाली बुद्धि वाले अनीतिपरायण राजा को पाकर समृद्ध राष्ट्र और नगर नष्ट हो जाते हैं ॥११॥ उसी प्रकार रत्न-समूहों से भरी हुई लंका तुझ अकेले के अपराध से अविलम्ब नष्ट हो जाएगी ॥१२॥ हे रावण, अपने कर्मों से मारे जाते हुए अदूरदर्शी, पापकर्म करने वाले जन के विनाश में प्राणी आनन्द मनाते हैं ॥१३॥ सताए हुए लोग तुझ पाप-कर्म करने वाले को खुश हो कर इस प्रकार कहेंगे—अच्छा हुआ यह भयंकर कर्म करने वाला (रावण) इस विपत्ति में पड़ गया है ॥१४॥ सूर्य से उस की प्रभा के समान मैं तो रघुनाथ जी से अभिन्न हूँ, मुझे ऐश्वर्य (पद) या धन के द्वारा प्रलोभित नहीं किया जा सकता ॥१५॥ उस, लोक के स्वामी की वन्दनीय भुजा को उपधान बनाकर अब मैं किसी अन्य की भुजा का आश्रय कैसे ले सकती

विवेकिभिः । **अभावाय** विनाशाय । **न प्रतिपद्यसे** न परिगृह्णासि । ११. **अकृतात्मानम्** सदुपदेशाग्राहिबुद्धिम् 'सदुपदेशों को ग्रहण न करने वाली बुद्धि वाले को' । १२. **विनशिष्यति** विनङ्क्ष्यति, इडागम आर्षः । १४. **निकृताः** त्वया वञ्चिताः क्लेशिताः वा । १५. **अनन्या** अविभक्ता, तृतीयया तत्परतन्त्रा चास्मि इति द्योत्यते । १६. **उपधाय**

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः ।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः ॥१७॥
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् ।
वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम् ॥१८॥
मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता ।
बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः ॥१९॥
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥२०॥
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि ॥२१॥

स्यामि ॥१६॥ व्रतस्नातस्य विदितात्मनः विप्रस्य विद्या इव च अहम् तस्य एव धरापतेः औपयिकी भार्या ॥१७॥ रावण ! साधु (इवम्) वने वासितया करेण्वा सार्धं गजाधिपम् इव दुःखितां मां रामेण समानय ॥१८॥ स्थानं परीप्सता घोरं बन्धं च अनिच्छता त्वया पुरुषर्षभः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः विदितः असौ रामः मित्रं कर्तुम् औपयिकम् । तेन ते मैत्री भवतु यदि जीवितुम् इच्छसि ॥१९-२०॥ त्वं-

---

हूँ ॥१६॥ ब्रह्मचर्यव्रतपूर्वक समावर्तन संस्कार को प्राप्त, आत्मज्ञ ब्राह्मण की ब्रह्म-विद्या की तरह मैं उस पृथिवी-पति की ही उपयुक्त पत्नी हूँ ॥१७॥ हे रावण ! यही उचित है कि जिस प्रकार वन में बंधी हुई हथिनी के साथ गजराज को मिला देते हैं उसी प्रकार मुझ दुखिया को राम से मिला दो ॥१८॥ लङ्का की रक्षा की इच्छा वाले और घोर बन्धन को न चाहने वाले तुझे उस पुरुष-श्रेष्ठ, सर्वकर्तव्यविद्, शरणागतवत्सल (अतः) प्रसिद्ध राम को मित्र बनाना उचित है। उसके साथ तेरी मित्रता होवे, यदि तू जीना चाहता है ॥१९-२०॥ और तू शरणा-

---

उपधानं कृत्वा, सह शयित्वा इति यावत् । १७. **व्रतस्नातस्य** ब्रह्मचर्यव्रतपूर्वकं कृतसमावर्तनस्य । **विद्या** ब्रह्मविद्या । १८. **समानय** संगमय । **वासितया**=वाशितया यौवनगतया "वाशिता युवतिः प्रोक्ता" इति कोशः । अथवा वासितया बद्धया । यहाँ "वने वासितया करेण्वेव गजाधिपम्" के स्थान पर विभक्ति-व्यत्यास से "वने वासितां करेणुं गजाधिपेनेव" पाठ करना चाहिये । यहाँ उपमान और उपमेय वाक्यों की विषमता का कारण विरहिणी सीता का क्रोध है । गोविन्दराज ने प्रकृत पाठ का भी समर्थन करते हुए कहा है—"वस्तुतस्तु यथान्यास एवान्वेति । रामेण संगमनं नाम रामाह्वानम् । नहि पुनरपि रामस्थानं तेन नेतुमीष्टे । किन्त्वत्र राममाहूय समर्पणमेव अत एव करेण्वा गजाधिपम् इत्युक्तम् ।" १९. **स्थानं परीप्सता** लङ्कां रिरक्षिषता 'लङ्का की रक्षा करना चाहने वाले के द्वारा', परि√आप्+सन्+शतृ तृतीया ए० व० । २०. **विदितः** प्रसिद्धः । २१. **निर्यातयितुम्** प्रतिदातुम् ।

एवं हि ते भवेत् स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे ।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम् ॥२२॥
वर्जयेद् वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् ।
त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥२३॥
रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् ।
शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥२४॥
इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः ।
इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः ॥२५॥
रक्षांसि निहनिष्यन्तः पुर्यामस्यां न संशयः ।
असंपातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः ॥२६॥

च शरणागतवत्सलम् एनं प्रसादयस्व, प्रयतो भूत्वा मां च अस्मै निर्यातयितुम् अर्हसि ॥२१॥ एवं रघूत्तमे संप्रदाय हि ते स्वस्ति भवेत् । अन्यथा कुर्वाणः हि त्वं च पराम् आपदं प्राप्स्यसि ॥२२॥ उत्सृष्टं वज्रं वर्जयेत्, अन्तकः चिरं वर्जयेत्, (परं) संक्रुद्धः लोकनाथः सः राघवः तु त्वद्विधं न (वर्जयेत्) ॥२३॥ शतक्रतुविसृष्टस्य अशनेः निर्घोषम् इव रामस्य धनुषः महास्वनं शब्दं त्वं श्रोष्यसि ॥२४॥ इह शीघ्रं ज्वलितास्याः उरगाः इव रामलक्ष्मणलक्षिताः सुपर्वाणः इषवः निपतिष्यन्ति ॥२५॥ अस्यां पुर्यां पतन्तः (अतएव) रक्षांसि निहनिष्यन्तः कङ्कवाससः असंपातं करिष्यन्ति, न

गतवत्सल इस (राम) को प्रसन्न कर, और संयत मन वाला होकर मुझे उसी को लौटा देना चाहिये ॥२१॥ इस प्रकार (मुझे) रघुश्रेष्ठ को देकर ही तेरा कल्याण होगा और इसके विपरीत करने से तू परम-विपत्ति को प्राप्त होगा ॥२२॥ छूटा हुआ वज्र छोड़ सकता है, काल भी चिरकाल तक छोड़ सकता है, (पर) क्रोध में आया हुआ लोक का स्वामी वह राम तेरे जैसे को नहीं छोड़ सकता ॥२३॥ इन्द्र के द्वारा छोड़े हुए वज्र के निर्घोष के समान राम के धनुष के महानाद वाले शब्द को तू सुनेगा ॥२४॥ यहाँ (लंका में) शीघ्र ही प्रज्वलित मुख वाले सांपों की तरह राम और लक्ष्मण के नामों से अङ्कित अनेक गांठों वाले बाण गिरेंगे ॥२५॥ इस नगरी में गिरने वाले (और इस लिये) राक्षसों का विनाश करने वाले, कंक पक्षी के परों से युक्त पृष्ठ-भागों वाले बाण कोई स्थान खाली नहीं छोड़ेंगे, इस में कोई संशय

---

२२. **संप्रदाय** सम्+प्र√दा+ल्यप् । **रघूत्तमे** में चतुर्थी के स्थान पर सप्तमी विभक्ति विचारणीय है। २३. **वर्जयेत्** न हन्यात् । २४. **महास्वनम्** महानादम्, नादो नाम स्वरावयवविशेषः । २५. **रामलक्ष्मणलक्षिताः** रामलक्ष्मणनामाङ्काः, **सुपर्वाणः** 'सुन्दर अथवा अनेक पर्वों (जोड़ों, गांठों) वाले' । बाण मूल रूप में बाण (=बांस) अथवा शर (=सरकंडे) से बने होने के कारण पोरों अथवा गांठों वाले होते थे। २६. **असंपातम्** अनवकाशम् । **कङ्कवाससः** कङ्कपत्रविशिष्टपुङ्खाः बाणाः 'कङ्क पक्षी के पंखों से युक्त

राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान् ।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ॥२७॥
अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः ।
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ॥२८॥
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले ।
अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ॥२९॥
आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः ।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ॥३०॥
नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥३१॥
तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम् ।
वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य विग्रहे ॥३२॥

संशयः ॥२६॥ राक्षसेन्द्रमहासर्पान् महान् स रामगरुडः वैनतेयः उरगान् इव वेगेन उद्धरिष्यति ॥२७॥ त्रिभिः क्रमैः विष्णुः असुरेभ्यः दीप्तां श्रियम् इव अरिन्दमः भर्ता त्वत्तः मां शीघ्रम् अपनेष्यति ॥२८॥ हतस्थाने जनस्थाने रक्षसां बले निहते, रक्षः ! अशक्तेन त्वया एतद् वै असाधु कृतम् ॥२९॥ नरसिंहयोः तयोः भ्रात्रोः गोचरं गतयोः शून्यं तद् आश्रमं प्रविश्य, अधम ! त्वया (अहम्) अपनीता ॥३०॥ शार्दूलयो. गन्धम् उपाघ्राय शुना इव रामलक्ष्मणयोः गन्धम् उपाघ्राय त्वया संदर्शने स्थातुं न हि शक्यम् ॥३१॥ वृत्रस्य एकस्य बाहोः इन्द्रबाहुभ्यां विग्रहे इव ताभ्याम् (रामलक्ष्मणा-

---

नहीं है ॥२६॥ राक्षसेन्द्र रूपी महान् सर्पों को वह महान् राम रूपी गरुड़ इस प्रकार तेज़ी से उखाड़ फैंकेगा जिस प्रकार गरुड नागों को उठा ले जाता है ॥२७॥ जिस प्रकार तीन पगों में विष्णु ने असुरों से प्रकाशमान (राज-)लक्ष्मी को छीन लिया था, उसी प्रकार शत्रुसूदन (मेरे) स्वामी तुझ से मुझे शीघ्र ही छीन ले जाएंगे ॥२८॥ नष्ट हुए (राक्षसों के) स्थान वाले जनस्थान में राक्षसों की सेना के नष्ट हो जाने पर, हे राक्षस ! तुझ असमर्थ के द्वारा यह (चोरी से अपहरण रूपी) दुष्ट कर्म किया गया है ॥२९॥ नरों में सिंह के समान उन दोनों भाइयों के वनप्रदेश में चले जाने पर, उस सूने आश्रम में घुस कर हे नीच ! तेरे द्वारा मेरा अपहरण किया गया ॥३०॥ (दो) सिंहों की गन्ध को सूँघ कर कुत्ते की तरह, राम और लक्ष्मण की गन्ध पाकर तेरे लिये सम्मुख ठहर पाना सम्भव नहीं है ॥३१॥ वृत्र की एक भुजा के इन्द्र की दो भुजाओं के साथ युद्ध की तरह उन दोनों राम और लक्ष्मण के साथ तेरे युद्ध में तेरे लिये विजय प्राप्त करना असम्भव है ॥३२॥

पिछले भाग वाले बाण'। २७. वैनतेयः विनतायाः अपत्यं पुमान्, गरुडः । २९. हतस्थाने हतास्पदे निवृत्तराक्षसनिवासे वा । एतत् चौर्येणापहरणम् । ३०. गोचरः गावः चरन्ति अत्र 'गायों के चरने का स्थान, वन'। ३१. संदर्शने समक्षम् । ३२. विग्रहे

क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह ।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ।।३३।।
गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवाऽऽलयं
सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः ।
असंशयं दाशरथेर्विमोक्षसे
महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ।।३४।।

स्याम्) तस्य ते विग्रहे युगग्रहणम् अस्थिरम् ।।३२।। आदित्यः अल्पं तोयम् इव नाथो मे स रामः सौमित्रिणा सह शरैः क्षिप्रं तव प्राणान् आदास्यते ।।३३।। कुबेरस्य आलयं गिरिं वा गतः, राज्ञः वरुणस्य सभां वा गतः त्वम् अशनेः कालहतः महाद्रुमः इव असंशयं दाशरथेः (बाणात् प्राणान्) विमोक्षसे ।।३४।।

जिस प्रकार सूर्य अल्प जल को ले लेता है उसी प्रकार मेरा स्वामी वह राम लक्ष्मण के साथ बाणों से शीघ्र ही तेरे प्राणों को ले लेगा ।।३३।। कुबेर के निवास स्थान (कैलास) पर्वत पर गया हुआ अथवा राजा वरुण की सभा में गया हुआ (भी) तू, निस्सन्देह राम के बाण से इस प्रकार प्राणों को छोड़ेगा, जिस प्रकार वज्र से काल से मारा हुआ महाद्रुम ।।३४।।

कलहे प्रसक्ते सति । **युगग्रहणम्** संयुगे जयग्रहणम् 'युद्ध में विजय प्राप्त करना', युगः =संयुगः । **अस्थिरम्** असंभावितम्, यद्वा युगग्रहणम् युद्धारम्भः **अस्थिरम्** अध्रुवम् । ३३. **आदास्यते** आ √दा, लृट्, प्र० पु०, ए० व०, आङो दोऽनास्यविहरणे (पा० १।३।२०) से आत्मनेपदम् । ३४. **कुबेरस्य आलयं** कैलासम् । **विमोक्षसे** प्राणान् इति शेषः । विमोक्ष्यसे इति पाङ्क्तः पाठः इति कतकः ।

द्वाविंशः सर्गः

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥१॥
यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा ।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥२॥
सन्नियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः ।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥३॥
वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निबध्यते ।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥४॥
एतस्मात् कारणान्न त्वां घातयामि वरानने ।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥५॥

ततः सीतायाः परुषं वचनं श्रुत्वा राक्षसेश्वरः (रावणः) प्रियदर्शनां सीतां विप्रियं प्रत्युवाच ॥१॥ सान्त्वयिता यथा यथा (सान्त्वयति) तथा तथा स्त्रीणां वश्यः (भवति)। (अहं तु) यथा यथा प्रियं वक्ता (अभूवम्) तथा तथा (त्वया)परिभूतः ॥२॥ सुसारथिः (अ-)मार्गम् आसाद्य द्रवतः हयान् इव समुत्थितः कामः त्वयि मे क्रोधं संनियच्छति ॥३॥ मनुष्याणां वामः कामः यस्मिन् किल निबध्यते तस्मिन् जने तु अनुक्रोशः स्नेहः च किल जायते ॥४॥ वरानने ! एतस्मात् कारणात् वधार्हाम्, अवमानार्हाम्, मिथ्या

उसके पश्चात् सीता के कठोर वचन सुनकर राक्षसों का स्वामी (रावण) सुन्दर आकृति वाली सीता को कटु वचन कहने लगा ॥१॥ सान्त्वना देने वाला जैसे जैसे सान्त्वना देता है वैसे वैसे ही स्त्रियों का प्रिय हो जाता है (पर) मैं तो जैसे जैसे मीठा बोलता गया वैसे वैसे तू मेरा तिरस्कार करती गई ॥२॥ उत्तम सारथि (कु)मार्ग पर पड़कर दौड़ते हुए घोड़ों को जिस प्रकार नियन्त्रण में रखता है उसी प्रकार जागृत (मेरा) काम तेरे प्रति क्रोध को दबाए हुए है ॥३॥ मनुष्यों का क्रूर काम निश्चय से जिसमें आबद्ध हो जाता है, उसी मनुष्य में दया और स्नेह उत्पन्न हो जाता है ॥४॥ हे सुमुखी ! इसलिये वध के योग्य, अपमानार्ह,

---

२. **वश्यः** इष्टः प्रियः । ३. **संनियच्छति** निरुणद्धि निवारयति । द्रवतः धावतः । ४. **वामः** क्रूरः 'सव्ये क्रौर्ये सुन्दरे च वामः' इति कोशः । अनुक्रोशः दया, स्नेहः । ५. **मिथ्या प्रव्रजने रताम्** निष्प्रयोजनम् एव भोगत्यागरूपप्रव्रजनमार्गे

परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥६॥
एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥७॥
द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः ।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥८॥
द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् ।
मम त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥९॥
तां भर्त्स्यमानां सम्प्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम् ।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥१०॥
ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः ।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥११॥

प्रव्रजने रतां त्वां न घातयामि ॥५॥ मैथिलि ! यानि यानि हि परुषाणि वाक्यानि मां ब्रवीषि तेषु तेषु तव दारुणः वधः युक्तः ॥६॥ क्रोधसंरम्भसंयुक्तः राक्षसाधिपः रावणः वैदेहीम् सीताम् एवम् उक्त्वा तु उत्तरं(वचनम्) अब्रवीत् ॥७॥ मया योऽवधिः ते कृतः (तौ) द्वौ मासौ मे रक्षितव्यौ । ततः, वरवर्णिनि ! त्वं मम शयनम् आरोह। द्वाभ्यां मासाभ्याम् ऊर्ध्वं तु मां भर्तारम् अनिच्छतीं त्वां सूदाः मम प्रातराशार्थे खण्डशः छेत्स्यन्ति ॥८-९॥ राक्षसेन्द्रेण भर्त्स्यमानां तां जानकीं संप्रेक्ष्य विकृतेक्षणाः ताः देव-

---

झूठ-मूठ ही प्रव्रज्या में लीन तुझे नहीं मार रहा हूँ ॥५॥ हे मैथिली ! जो जो कठोर वचन तू मुझे कहती है, उन सब के लिये तू कठोर मृत्युदण्ड के योग्य है ॥६॥ क्रोध और आवेश से युक्त राक्षसराज रावण विदेह (=जनक) की पुत्री सीता को ऐसा कहकर आगे वचन बोला ॥७॥ मेरे द्वारा जो अवधि तेरे लिये (निश्चित) की गई थी (उन शेष बचे) दो मास तक मुझे प्रतीक्षा करनी है । उसके पश्चात्, हे सुन्दर वर्णों वाली, तू मेरी शय्या पर आरोहण कर । दो मास के उपरान्त मुझे पति रूप में न चाहने वाली तुझ को रसोइये मेरे प्रातराश के लिये टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे ॥८-९॥ राक्षसराज से भर्त्सना की हुई उस जनक की पुत्री को देख कर विकृत आंखों वाली देवों और गन्धर्वों की वे कन्याएं दुःखी हुईं । कुछ होंटों के

रताम् । ७. **क्रोधसंरम्भसंयुक्तः** क्रोधः च संरम्भः आवेशः च ताभ्यां संयुक्तः, क्रोधप्रणयाभ्यां संयुक्तः इति गोविन्दराजः । **उत्तरम्** उत्तरं वचनम् । ८. **रक्षितव्यौ द्वौ मासौ मे** अरण्यकाण्ड (५६।२४-२५) में **मासान् द्वादश भामिनि** इत्यादि में जो बारह मास की अवधि की थी उनमें से शेष बचे दो मास और प्रतीक्षा करनी है । ९. **अनिच्छतीम्** न इच्छन्तीम्, इष् (इच्छ), तुदादिगण का धातु होने से नु (नुम्) का आगम वैकल्पिक है । १०. **विषेदुः** वि √सद्, लिट्, प्र० पु०, ब० व० ।

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम् ।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् ॥१२॥

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद् विगर्हितात् ॥१३॥

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः ।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥१४॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
उक्तवानसि यत् पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥१५॥

यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने ।
तथा द्विरदवद् रामस्त्वं नीच शशवत् स्मृतः ॥१६॥

गन्धर्वकन्याः विषेदुः । अपराः ओष्ठप्रकारैः तथा अपराः नेत्रैः वक्त्रैः च तेन रक्षसा तर्जितां सीताम् आश्वासयामासुः ॥१०-११॥ ताभिः आश्वासिता सीता राक्षसाधिपं रावणं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् आत्महितं वाक्यम् उवाच ॥१२॥ नूनं अस्मिन् (नगरे) कश्चिद् जनः ते निःश्रेयसि न स्थितः यः त्वाम् विगर्हितात् अस्मात् कर्मणः न निवारयति ॥१३॥ शचीपतेः शचीम् इव धर्मात्मनः हि पत्नीं मां त्रिषु लोकेषु त्वद् अन्यः मनसा अपि कः प्रार्थयेत् ॥१४॥ राक्षसाधम ! अमिततेजसः रामस्य भार्यां यत् पापम् उक्तवान् असि क्व गतः तस्य मोक्ष्यसे ॥१५॥ यथा वने दृप्तः मातङ्गः च शशः च सहितौ (युयुत्सू

विशेष प्रकार के आकारों से तथा अन्य नेत्रों और मुखों से उस राक्षस के द्वारा तर्जित सीता को आश्वासन देने लगीं ॥१०-११॥ उनके द्वारा आश्वस्त सीता राक्षसपति रावण को सदाचार और पति-शौर्य के कारण गर्वित और (रावण की) अपनी भलाई का वचन बोली ॥१२॥ निश्चय से इस नगर में कोई भी नर तेरे हित में नहीं है जो तुझे इस निन्दित कर्म से नहीं रोक रहा है ॥१३॥ इन्द्र की इन्द्राणी की तरह मुझ उस धर्मात्मा की पत्नी को तीनों लोकों में तेरे सिवाए कौन अन्य जन मन से भी (पत्नी रूप में) चाहेगा ॥१४॥ नीच राक्षस ! अमित तेज वाले राम की पत्नी को जो पापयुक्त वचन तूने कहा है, तू कहां जा कर उससे बच सकेगा ॥१५॥ जिस प्रकार वन में परस्पर लड़ने की इच्छा वाले गर्वित हाथी और खरगोश होते हैं उसी प्रकार राम तो हाथी के समान है और तू, हे नीच! खरगोश के

देवगन्धर्वकन्याः सीतावद् एव बलाद् आहृता इति । १२. वृत्तशौटीर्यगर्वितम् वृत्तेन सदाचारेण शौटीर्येण पतिशौर्येण च संजातगर्वम् । १३. निःश्रेयसि कल्याणे । १४ प्रार्थयेत पत्नीरूपेण स्थापयितुम् इच्छेत् । १५. राक्षसाधम अधम राक्षस (सम्बु०). यहाँ विशेष्य का पूर्वनिपात हुआ है। कुत्सितानि कुत्सनैः—पा० २।१।५३ ।

स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे ।
चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि ॥१७॥

इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले ।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥१८॥

तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च ।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥१९॥

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥२०॥

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥२१॥

भवतः) तथा रामः द्विरदवत्, नीचः ! त्वं (च) शशवत् स्मृतः ॥१६॥ यावत् तस्य चक्षुषः विषये न उपगच्छसि (तावत्) सः त्वम् इह इक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन् न लज्जसे ॥१७॥ अनार्य ! मां निरीक्षतः क्रूरे, विकृते, कृष्णपिङ्गले इमे ते नयने क्षितौ कस्मात् न पतिते ॥१८॥ पाप ! तस्य धर्मात्मनः पत्नीं दशरथस्य च स्नुषां मां व्याहरतः ते जिह्वा कथं न शीर्यति ॥१९॥ दशग्रीव ! रामस्य तु असंदेशात् तपसः च अनुपालनात् त्वां भस्मार्हतेजसा भस्म न कुर्मि ॥२०॥ धीमतः तस्य रामस्य (भार्या) अहं (त्वया) अपहर्तुं न शक्या । तव वधार्थाय विधिः विहितः, अत्र संशयः न ॥२१॥

समान है ॥१६॥ जब तक तू उसकी आंखों के सामने नहीं आता (तब तक) वैसा (नीच) तू यहां राम की निन्दा करते हुए नहीं लजा रहा है ॥१७॥ हे अनार्य ! मुझे देखते हुए की तेरी ये क्रूर, विकृत, काली-पीली आंखें धरती पर क्यों नहीं गिर पड़ीं ॥१८॥ हे पापी ! उस धर्मात्मा (राम) की पत्नी और दशरथ की स्नुषा मुझ (सीता) को (पापपूर्ण) वचन कहते हुए तेरी जिह्वा क्यों नहीं कट जाती ॥१९॥ हे दशग्रीव ! राम का आदेश न होने से और तप के अनुपालन के लिये मैं तुझे भस्म करने में समर्थ (अपने) तेज से भस्म नहीं कर रही हूँ ॥२०॥ उस बुद्धिमान् राम की पत्नी मैं (तेरे द्वारा) अपहरण नहीं की जा सकती थी (यह तो) तेरे वध के लिये विधान किया गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२१॥

तस्य तस्मात् । १७. क्षिपन् निन्दन् । १९. व्याहरतः दुरुक्तम् उच्चारयतः । शीर्यति पतति । २०. असंदेशात् शापविषये रामाज्ञाभावात् 'शाप के विषय में राम की आज्ञा न होने से' । भस्मार्हतेजसा भस्मजनकत्वशक्तिमता तेजसा । कुर्मि करोमि, मिप् पित् होते हुए भी अपित्(=कित्)वत् कार्य होने से गुणाभाव, अत् को उत् और विकरण-लोप हो जाने से करोमि के स्थान पर कुर्मि (आर्ष) प्रयोग है ।

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद् दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥२२॥

सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥२३॥

नीलजीमूतसंकाशो महाभुजशिरोधरः ।
सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान् दीप्तजिह्वोग्रलोचनः ॥२४॥

चलाग्रमुकुटप्रांशुश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः ॥२५॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥२६॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥२७॥

शूरेण, धनदभ्रात्रा, बलैः समुदितेन च त्वया रामम् अपोह्य कस्मात् चित् दारचौर्यं कृतम् ॥२२॥ सीतायाः वचनं श्रुत्वा राक्षसाधिपः रावणः क्रूरे नयने विवृत्य जानकीम् अन्ववैक्षत ॥२३॥ नीलजीमूतसंकाशः, महाभुजशिरोधरः, सिंहसत्त्वगतिः, श्रीमान्, दीप्तजिह्वोग्रलोचनः, चलाग्रमुकुटप्रांशुः, चित्रमाल्यानुलेपनः, रक्तमाल्याम्बरधरः, तप्ताङ्गदविभूषणः, अमृतोत्पादने भुजङ्गेन नद्धः मन्दरः इव महता मेचकेन श्रोणीसूत्रेण सुसंवृतः, अचलसंकाशः स राक्षसेश्वरः मन्दरः शृङ्गाभ्याम् इव परिपूर्णाभ्यां

तुझ शूरवीर, कुबेर के भ्राता और सेनाओं से सम्पन्न के द्वारा राम को दूर भेज कर (यह) स्त्री-अपहरण क्यों किया गया ॥२२॥ सीता की बात सुनकर राक्षसराज रावण ने क्रूर आंखों को फाड़ कर जानकी को देखा ॥२३॥ नीले मेघ के सदृश, महान् भुजाओं और गरदन वाला, सिंह जैसी शक्ति और चाल वाला, शोभा-सम्पन्न, प्रकाशमान जिह्वा और भयङ्कर आंखों वाला, हिलते हुए अग्रभाग वाले मुकुट से लम्बा दिखने वाला, रंगबिरंगी मालाओं और अनुलेप वाला, लाल मालाओं और वस्त्रों को धारण करने वाला, कुन्दन से बने बाजूबन्दों से विभूषित, अमृत के संचय में (शेष) नाग से नद्ध मन्दर (पर्वत) की तरह महान् काले वर्ण की रशना से भली प्रकार संवृत, पर्वतसदृश वह राक्षसराज परिपुष्ट उन भुजाओं से इस प्रकार शोभायमान हो रहा था जिस प्रकार मन्दराचल (दो) चोटियों से ॥२४-२७॥

---

२२. अपोह्य अपवाह्य, दूरं प्रापय्य । दारचौर्यम् दाराणां चौर्यम् । २३. विवृत्य विवर्त्य 'खोलकर, फाड़कर' । २४ सिंहसत्त्वगतिः सिंहवत् सत्त्वं पराक्रमः गतिः गमनं च यस्य । दीप्तजिह्वोग्रलोचनः दीप्ता जिह्वा उग्रे लोचने च यस्य , २५. चलाग्रमुकुटप्रांशुः (कोपेन) चलम् अग्रं यस्य तत्, चलाग्रं च तत् मुकुटं च तेन प्रांशुः दीर्घः '(कोप से) हिलते हुए अग्रभाग वाले उस मुकुट से लम्बा' । २६. श्रोणीसूत्रेण कटिसूत्रेण रशनया । मेचकेन श्यामलेन । २७. परिपूर्णाभ्याम् अतिपुष्टाभ्याम् ।

तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः ।
रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः ॥२८॥
स कल्पवृक्षप्रतिमो वसन्त इव मूर्तिमान् ।
श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयंकरः ॥२९॥
अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजंग इव निःश्वसन् ॥३०॥
अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥३१॥
इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
संदिदेश ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥३२॥
एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लम्बकर्णीमकर्णिकाम् ॥३३॥

ताभ्यां भुजाभ्यां शुशुभे ॥२४-२७॥ रक्तपल्लवपुष्पाभ्याम् अशोकाभ्याम् (भूषितः) अचल इव तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः, कल्पवृक्षप्रतिमः, मूर्तिमान् वसन्त इव, भूषितोऽपि भयङ्करः (अतः) श्मशानचैत्यप्रतिमः, कोपसंरक्तलोचनः भुजङ्ग इव निःश्वसन् वैदेहीं सीताम् अवेक्षमाणः स रावणः उवाच ॥२८-३०॥ अनयेन अभिसम्पन्नम् अर्थहीनम् अनुव्रते ! सूर्यः ओजसा सन्ध्याम् इव अद्य अहं त्वां नाशयामि ॥३१॥ इति मैथिलीम् उक्त्वा ततः शत्रुरावणः राजा रावणः घोरदर्शनाः सर्वा राक्षसीः संदिदेश । एकाक्षीम् एककर्णां च, तथा कर्णप्रावरणाम्, गोकर्णीम्,

---

(दो) लाल पल्लव और पुष्पों वाले अशोक वृक्षों से भूषित पर्वत की तरह तरुण सूर्य के वर्ण वाले कुण्डलों से विभूषित, कल्पवृक्ष की उपमा वाला, विग्रहवान् वसन्त सा, भूषणों से युक्त होता हुआ भी भयङ्कर दिखाई देने वाला, (और इसीलिये) श्मशान के चैत्य जैसा दिखने वाला, क्रोध से लाल आँखों वाले सर्प की तरह उसासें भरता हुआ, विदेह की पुत्री सीता को देखता हुआ वह रावण बोला ॥२८-३०॥ हे अनीति से युक्त और धनहीन (राम) में पति-भक्ति रखने वाली ! जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से सन्ध्या (प्रातः कालीन अन्धकार) को नष्ट कर देता है उसी प्रकार मैं आज तुझे नष्ट करता हूँ ॥३१॥ इस प्रकार मैथिली को कह कर तब शत्रुओं को रुलाने वाले राजा रावण ने भयङ्कर आकृति वाली सब राक्षसियों को आदेश दिया । एक आंख वाली को और एक कान वाली राक्षसी को (आदेश दिया), उसी प्रकार कानों से ढके शरीर वाली को (आदेश दिया), गाय जैसे कानों वाली

---

२९. **चैत्यम्** श्मशानवृक्षः श्मशानमण्डपो वा । ३१. **अनयेन** अनीत्या । **अर्थहीनम्** रामम् इति शेषः । ३२. संददर्श के स्थान पर गोविन्दराज का संदिदेश पाठ ही संगत

हस्तिपद्यश्वपद्यौ च गोपदीं पादचूलिकाम् ।
एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ॥३४॥
अतिमात्रशिरोग्रीवामतिमात्रकुचोदरीम् ।
अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वानखामपि ॥३५॥
अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सुकरीमुखीम् ।
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ॥३६॥
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ।
प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ॥३७॥
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ।
इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ॥३८॥
काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ।
उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ॥३९॥

हस्तिकर्णीं च, लम्बकर्णीम्, अकर्णिकाम्, हस्तिपद्यश्वपद्यौ च, गोपदीम्, पादचूलिकाम्, एकाक्षीम्, एकपादीं च, पृथुपादीम्, अपादिकाम्, अतिमात्रशिरोग्रीवाम्, अतिमात्रकुचोदरीम्, अतिमात्रास्यनेत्रां च, दीर्घजिह्वानखाम् अपि, अनासिकाम्, सिंहमुखीम्, गोमुखीम्, सूकरीमुखीं (च संदिदेश) ॥३२-३६॥ राक्षस्यः ! सर्वाः समेत्य वा क्षिप्रं तथा कुरुत यथा जानकी सीता क्षिप्रं मद्वशगा भवति ॥३६-३७॥ प्रतिलोमानुलोमैः सामदानादिभेदनैः च, दण्डस्योद्यमनेन च वैदेहीम् आवर्जयत । इति प्रतिसमादिश्य काममन्युपरीतात्मा राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः जानकीं प्रति (अ)गर्जत ॥३७-३९॥ ततः

को, हाथी जैसे कानों वाली को, लम्बे कानों वाली को, कर्णहीना को, हाथी जैसे पांव वाली और घोड़े जैसे पांव वालियों को, गाय जैसे पांव वाली को, पांव पर पड़े जूड़े वाली को, एक आंख वाली को, एक पांव वाली को, चौड़े पांव वाली को, पादहीना को, बहुत बड़े सिर और गरदन वाली को, बहुत बड़े बड़े स्तनों और पेट वाली को, बहुत बड़े मुख और आंखों वाली को, लम्बी जिह्वा और नाखूनों वाली को, नासिका हीन को, शेर जैसे मुंह वाली को, गाय जसे मुंह वाली को और सूअरी जैसे मुंह वाली को आदेश दिया ॥३२-३६॥ हे राक्षसियो ! तुम सब मिलकर शीघ्र ही ऐसा (प्रयास) करो जिससे जनक की पुत्री सीता अविलम्ब मेरे वश में हो जाए ॥३६-३७॥ प्रतिकूल और अनुकूल साम, दान और भेद के उपायों से और दण्ड के प्रयोग से विदेह (=जनक) की पुत्री (सीता) को मेरी ओर झुकाओ । ऐसी आज्ञा देकर काम और क्रोध से युक्त मन वाला (वह) राक्षसराज

है । ३३. एकाक्षीम् एकाक्षीप्रभृतीः राक्षसीः संदिदेश इत्यर्थः । ३४. एकाक्षी, गोकर्णी, लम्बकर्णी बहुव्री० समस्त पदों में उत्तरपद में नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण, शृङ्ग आदि अङ्गवाची शब्द होने पर विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है (पा० ४।१।५५) । ३७. प्रतिलोमानुलोमैः प्रतिकूलानुकूलव्यवहारैः । ३९. गर्जत अगर्जत

परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ।
मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया ॥४०॥

विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ।
नूनमस्यां महाराज न देवा भोगसत्तमान् ॥४१॥

विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् ।
अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ॥४२॥

इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ।
एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली ।
प्रहसन् मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ॥४३॥

प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
ज्वलद्भास्करसंकाशं प्रविवेश निवेशनम् ॥४४॥

धान्यमालिनी राक्षसी क्षिप्रं दशग्रीवम् उपगम्य परिष्वज्य (च) इदं वचनम् अब्रवीत् । महाराज ! मया क्रीड, राक्षसेश्वर ! विवर्णया, कृपणया, मानुष्या अनया सीतया तव किं (प्रयोजनम्) । महाराज ! नूनम् अमरश्रेष्ठाः देवाः तव बाहुबलार्जितान् भोगसत्तमान् अस्यां न विदधति । अकामां कामयानस्य शरीरम् उपतप्यते । इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिः शोभना भवति ॥३६-४३॥ ततः राक्षस्या एवम् उक्तः समुत्क्षिप्तः बली मेघसंकाशः सः राक्षसः तु प्रहसन् न्यवर्तत ॥४३॥ मेदिनीं कम्पयन् इव स दशग्रीवः प्रस्थितः, ज्वलद्भास्करसंकाशं निवेशनं (च) प्रविवेश ॥४४॥

(रावण) बार बार जानकी की ओर गरजने लगा ॥३७-३६॥ उसके पश्चात् धान्यमालिनी नामक राक्षसी ने तुरन्त रावण के पास जाकर और उसके गले लग कर यह वचन कहा। महाराज ! मेरे साथ क्रीडा कर। हे राक्षसराज ! इस भद्दे वर्ण वाली, दीन, मानुषी सीता से तेरा क्या प्रयोजन ? महाराज ! निश्चय ही अमरों में श्रेष्ठ देवों ने तेरे बाहुबल से अर्जित उत्तम भोगों को इसके लिये विधान नहीं किया है। कामहीना की कामना करने वाले का शरीर संतप्त रहता है। चाहने वाली को चाहने वाले की प्रीति सुखदायिनी होती है ॥३६-४३॥ उसके पश्चात् राक्षसी के द्वारा इस प्रकार संबोधित किया हुआ और वहाँ से अन्यत्र ले जाया हुआ बलवान्, मेघ जैसा वह राक्षस हँसता हुआ वहाँ से हट गया ॥४३॥ धरती को कंपाता हुआ सा वह रावण चल पड़ा और प्रकाशमान सूर्य के सदृश

अडभाव आर्षः । ४२. विदधति नानुमन्यन्ते, अस्याः दिव्यभोगे भाग्यं नास्ति ।

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः ।
परिवार्य दशग्रीवं प्रविशुस्ता गृहोत्तमम् ॥४५॥
स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां
प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः ।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः
स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः ॥४६॥

ततः ताः देवगन्धर्वकन्याः च ताः नागकन्याः च दशग्रीवं परिवार्य गृहोत्तमं प्रविशुः ॥४५॥ मदनेन मोहितः सः रावण धर्मपराम्, अवस्थितां, प्रवेपमानां मैथिलीं सीतां परिभर्त्स्य विहाय च स्वं वेश्म एव प्रविवेश ॥४६॥

(अपने) महल में प्रवेश कर गया ॥४४॥ उसके पश्चात् वे देवों और गन्धर्वों की कन्याएं और नाग-कन्याएं रावण को सब ओर से घेर कर उत्तम घर में प्रविष्ट हो गईं ॥४५॥ काम से भ्रष्ट हुई बुद्धि वाले उस रावण ने धर्मपरायण, धरती पर बैठी हुई, कांपती हुई मैथिली सीता को धमका कर और (फिर) उसको वहीं छोड़कर अपने घर में ही प्रवेश किया ॥४६॥

कामयानस्य कामयमानस्य । ४५. **प्रविशुः** प्रविविशुः । प्रविशुः--आर्ष प्रयोग है ।

त्रयोविंशः सर्गः

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
संदिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह ॥१॥
निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते ।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥२॥
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥३॥
पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः ।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥४॥
ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ॥५॥

इति मैथिलीम् उक्त्वा सर्वाः राक्षसीः सन्दिश्य च ततः शत्रुरावणः राजा रावणः निर्जगाम ह ॥१॥ राक्षसेन्द्रे निष्क्रान्ते पुनः अन्तःपुरं गते तु भीमरूपाः ताः राक्षस्यः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥२॥ ततः परं क्रोधमूर्च्छिताः राक्षस्यः वैदेहीं सीताम् उपागम्य परुषया वाचा इदम् अब्रुवन् ॥३॥ सीते ! पौलस्त्यस्य, वरिष्ठस्य, दशग्रीवस्य, महात्मनः रावणस्य भार्यात्वं (मोहात्) बहु न मन्यसे ॥४॥ ततः तु क्रोधताम्राक्षी एकजटा नाम राक्षसी करतलोदरीं सीताम् आमन्त्र्य वाक्यम् अब्रवीत् ॥५॥

इस प्रकार मैथिली को कहकर और सब राक्षसियों को आज्ञा देकर शत्रुओं को रुलाने वाला तब वह राजा रावण निकल गया ॥१॥ राक्षसाधिपति के निकल जाने पर और पुनः अन्तःपुर में चले जाने पर भयंकर रूप वाली वे राक्षसियाँ सीता की ओर दौड़ीं ॥२॥ तत्पश्चात् क्रोध से मूर्च्छित राक्षसियाँ विदेह (=जनक) की पुत्री सीता के पास आकर कठोर वाणी से यह (वचन) बोलीं ॥३॥ हे सीते ! तू पुलस्त्य के वंशज, श्रेष्ठ, दशग्रीव, महात्मा रावण के पत्नीत्व का (नासमझी के कारण) कुछ भी आदर नहीं करती ॥४॥ उसके पश्चात् क्रोध से लाल आंखों वाली एक जटा नामक राक्षसी पतली कमर वाली सीता को सम्बोधित करके (यह) वाक्य

---

१. **शत्रुरावणः** शत्रून् रावयति हाहाशब्दं कारयति सः । २. **समभिदुद्रुवुः** जग्मुः । ४. **भार्यात्वम्** भार्याभावम्, पत्नीत्वम् । ५. **आमन्त्र्य** संबोध्य । **करतलोदरीम्** करतलेन ग्रहीतुं शक्यम् उदरं यस्याः ताम् 'मुट्ठी भर पेट वाली को, पतली कमर वाली

प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः ॥६॥
पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥७॥
तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥८॥
मयोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे।
ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥९॥
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा।
येन देवास्त्रयस्त्रिंशद् देवराजश्च निर्जितः ॥१०॥
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि।
वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे ॥११॥

ब्रह्मणः मानसः पुत्रः तु अयं पुलस्त्य इति विश्रुतः षण्णां प्रजापतीनाम् चतुर्थः प्रजापतिः (च)। पुलस्त्यस्य मानसः सुतः तु तेजस्वी महर्षिः प्रजापतिसमप्रभः नाम्ना सः विश्रवा नाम (अभूत्)। विशालाक्षि! तस्य पुत्रः शत्रुरावणः (अयं) रावणः। तस्य राक्षसेन्द्रस्य त्वं भार्या भवितुम् अर्हसि। चारुसर्वाङ्गि! मयोक्तं वाक्यं किं नानुमन्यसे ॥६-९॥ ततः मार्जारसदृशेक्षणा हरिजटा नाम राक्षसी कोपात् नयने विवृत्य वाक्यम् अब्रवीत्। येन त्रयस्त्रिंशत् देवाः देवराजः च निर्जितः तस्य राक्षसेन्द्रस्य त्वं भार्या भवितुम् अर्हसि। वीर्योत्सिक्तस्य, शूरस्य, सङ्ग्रामेषु अनिवर्तिनः, बलिनः,

---

बोली ॥५॥ ब्रह्मा का मानस पुत्र यह पुलस्त्य नाम से प्रसिद्ध है और छः प्रजापतियों में से चौथा प्रजापति है। पुलस्त्य का मानस पुत्र तेजस्वी, महर्षि, प्रजापति के समान प्रताप वाला विश्रवा नाम वाला हुआ। हे बड़ी-बड़ी आंखों वाली! उसका पुत्र शत्रुओं को रुलाने वाला यह रावण है। उस राक्षसराज की तुझे भार्या होना योग्य है। हे सब सुन्दर अंगों वाली! मेरे द्वारा कही बात को क्यों नहीं मानती ॥६-९॥ उसके पश्चात् बिलाव जैसी आँखों वाली हरिजटा नामक राक्षसी क्रोध से आँखें फाड़कर वचन बोली। जिसके द्वारा तेतीस देवता और देवराज (इन्द्र) जीत लिया गया, उस राक्षसराज की तुझे भार्या होना योग्य है। बल से उद्धत, शूर, युद्धों में पीछे न लौटने वाले, बली (और) शक्ति सम्पन्न (रावण) के पत्नीत्व को तू क्यों

को'। ६. मरीचि, अत्रि, अङ्गिरस्, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु इन छः प्रजापतियों में पुलस्त्य चौथा प्रजापति है। ९. चारुसर्वाङ्गी चारूणि सर्वाणि अङ्गानि यस्याः सा, सम्बुद्धौ ईकारस्य ह्रस्वः। ११. लिप्ससे √लभ् सन्, लट्, म० पु०, ए० व०, इच्छसि।

प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः ।
सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः ॥१२॥
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् ।
अन्तःपुरं तदुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ॥१३॥
अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
असकृद् भीमवीर्येण नागा गन्धर्वदानवाः ।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥१४॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः ।
किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ॥१५॥
ततस्तां दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य स मारुतः ।
न वाति स्मायतापाङ्गि किं त्वं तस्य न तिष्ठसे ॥१६॥

वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे ? प्रियां, बहुमतां, सर्वासां च महाभागाम्, भार्यां त्यक्त्वा महाबलः राजा रावणः त्वाम् उपैष्यति । स्त्रीसहस्रेण समृद्धम्, नानारत्नोपशोभितं तद् अन्तःपुरम् उत्सृज्य रावणः त्वाम् उपैष्यति ॥९-१३॥ अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यम् अब्रवीत् । भीमवीर्येण येन नागाः गन्धर्वदानवाः (च) असकृत् समरे निर्जिताः, सः ते पार्श्वम् उपागतः । अधमे ! सर्वसमृद्धस्य, राक्षसेन्द्रस्य, महात्मनः तस्य रावणस्य भार्यात्वं किम् अर्थं न इच्छसे ॥१४-१५॥ ततः दुर्मुखी नाम राक्षसी तां वाक्यम् अब्रवीत् । यस्य भीतः सूर्यः न तपति (स्म), भीतः (च) स मारुतः न

नहीं चाहती ? प्रिया, बहुमता और सब पत्नियों में महाभागा भार्या (मन्दोदरी) को छोड़कर महाबली राजा रावण तेरे पास आएगा । हज़ारों स्त्रियों से समृद्ध, और नाना रत्नों से शोभित उस अन्तःपुर को छोड़कर रावण तेरे पास आएगा ॥९-१३॥ अन्य विकटा नाम की राक्षसी वचन बोली । जिस भयंकर बल वाले के द्वारा नाग, गन्धर्व और दानव अनेक बार युद्ध में जीत लिये गए, वह तेरे पास आया है । हे अधम ! सब प्रकार की समृद्धियों वाले, राक्षसराज, उस महात्मा रावण के पत्नीत्व को तू क्यों नहीं चाहती ॥१४-१५॥ तब दुर्मुखी नाम की राक्षसी उसको वचन बोली । जिससे डरा हुआ सूर्य नहीं तपता और जिससे डरकर वायु नहीं चलता, हे

वीर्योत्सिक्तस्य उद्धतवीर्यस्य । १३. स्त्रीसहस्रेण स्त्रीणां सहस्रं तेन 'हज़ारों स्त्रियों से' । १५. इच्छसे पदव्यत्यय आर्षः १६. यस्य भीतः यस्माद् भीतः, पञ्चम्याः स्थाने षष्ठी 'भीत्रार्थानां भयहेतुः—पा० १।४।२५' से अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी होनी चाहिये थी । तस्य न तिष्ठसे आस्थां न करोषि इति तिलकटीकाकारः । गोविन्दराजस्तु तस्य न तिष्ठसि इति पाठं स्वीकृत्य तस्मै न तिष्टसे, प्रकाशनार्थेऽप्यार्षत्वात्

पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् ।
शैला सुस्रुवुः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति ।।१७।।
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि ।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि ।।१८।।
साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि ।
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि ।।१९।।

वाति स्म, आयतापाङ्गि ! त्वं तस्य किं न तिष्ठसे ? यस्य भयात् च तरवः वै पुष्प-वृष्टिं मुमुचुः । यदा (सः) इच्छति (तदा) शैलाः जलदाः च पानीयं सुस्रुवुः । भामिनि ! नैर्ऋतराजस्य, राजराजस्य, तस्य रावणस्य भार्यार्थे हि त्वं बुद्धिं किं न कुरुषे । देवि ! भामिनि ! सुस्मिते ! साधु तत्त्व तः ते कथितं वाक्यं साधु गृहाण अन्यथा न भविष्यसि ।।१६-१९।।

विशालाक्षी ! तू उसकी कामना पूरी क्यों नहीं करती ? जिसके भय से वृक्ष फूलों की वर्षा करते हैं, जब वह चाहता है तब पर्वत और बादल पानी बरसाते हैं, हे भामिनी ! राक्षसराज, राजाधिराज, उस रावण के पत्नीत्व के लिये तू निश्चय क्यों नहीं करती ? हे देवी, हे भामिनी, हे सुन्दर मुस्कान वाली, भली प्रकार, यथार्थ रूप से जो बात तुझे कही गई है उसे भली प्रकार ग्रहण कर, अन्यथा तू नहीं बचेगी ।। १६-१९।।

परस्मैपदं षष्ठी चेत्याह । १९. तत्त्वतः यथार्थम् ।

चतुर्विंशः सर्गः

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः ।
परुषं परुषानर्हामूचुस्तद् वाक्यमप्रियम् ॥१॥

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे ।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥२॥

मानुषे मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे ।
प्रत्याहर मनो रामान्नैवं जातु भविष्यति ॥३॥

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम् ॥४॥

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवन्तमनिन्दिते ॥५॥

ततः समस्ताः विकृताननाः ताः राक्षस्यः परुषानर्हां सीतां परुषम् अप्रियं (च) तत् वाक्यम् ऊचुः ॥१॥ सीते ! त्वं सर्वभूतमनोरमे महार्हशयनोपेते अन्तःपुरे वासं किं न अनुमन्यसे ॥२॥ मानुषे ! (त्वं) मानुषस्य भार्यात्वम् एव बहु मन्यसे । रामात् मनः प्रत्याहर । एवं (त्वदीप्सितरामसङ्गमः) जातु न भविष्यति ॥३॥ त्रैलोक्यवसुभोक्तारं राक्षसेश्वरं भर्तारं रावणम् उपसंगम्य यथासुखं विहरस्व ॥४॥ शोभने ! अनिन्दिते ! मानुषी (त्वं) तु राज्याद् भ्रष्टम् असिद्धार्थं विक्लवन्तं मानुषं तं रामम्

तब उन सब भोंडे मुख वाली राक्षसियों ने कठोर शब्दों के अयोग्य सीता को वह कठोर और कड़वा वचन कहा ॥१॥ हे सीते ! तू सब प्राणियों के मन को लुभाने वाले, बहुमूल्य शय्याओं से युक्त अन्तःपुर में वास क्यों स्वीकार नहीं करती ॥२॥ हे मनु की सन्तान ! (तू) मनुष्य की भार्या होने को अधिक महत्त्व दे रही है । राम से मन को लौटा ले । इस प्रकार तो (तेरे द्वारा इष्ट राम के साथ मिलन) कभी न होगा ॥३॥ तीनों लोकों के धन को भोगने वाले, राक्षसाधिपति, स्वामी रावण से मिलकर सुखपूर्वक विहार कर ॥४॥ हे सुन्दरी ! हे प्रशंसनीय ! मनुष्यजाति की होने के कारण तू राज्य से हीन, असफल उद्देश्य

---

३. प्रत्याहर निवर्तय । जातु कदाचित् । मानुषी मनुवंशजाता ।

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥
यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत संगताः ।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ॥७॥
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥८॥
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥९॥
यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति ।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥१०॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥११॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥१२॥

इच्छसि ॥५॥ राक्षसीनां वचः श्रुत्वा पद्मनिभेक्षणा सीता अश्रुपूर्णाभ्यां नेत्राभ्याम् इदं वचनम् अब्रवीत् ॥६॥ संगताः (यूयम्) यद् लोकविद्विष्टं किल्बिषम् इदं वाक्यम् उदाहरत एतत् मे मनसि न प्रतितिष्ठति ॥७॥ मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुं न अर्हति । कामं सर्वाः मां खादत, न वो वचः करिष्यामि ॥८॥ दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः (अस्ति) । सूर्यं सुवर्चला यथा तं नित्यम् अनुरक्ता अस्मि ॥९॥ यथा महाभागा शची शक्रं समुपतिष्ठति, (यथा) अरुन्धती वसिष्ठं, यथा रोहिणी शशिनम्, यथा लोपामुद्रा अगस्त्यम्, यथा सुकन्या च्यवनम्, (यथा) सावित्री च सत्यवन्तम्, यथा श्रीमती कपिलम्, मदयन्ती सौदासम् इव, यथा केशिनी सगरम्,

वाले डरपोक उस मनुष्य जाति के राम को ही चाहती है ॥५॥ राक्षसियों की बात को सुनकर कमल (पत्र) के समान आँखों वाली सीता आंसुओं से भरी हुई आंखों के साथ यह वचन बोली ॥६॥ मिलकर (तुम) जो लोकविरुद्ध, पापपूर्ण यह बात कहती हो वह मेरे मन में नहीं बैठती ॥७॥ मनुष्य जाति की स्त्री राक्षस की पत्नी नहीं हो सकती । भले ही तुम सब मुझे खा डालो, पर मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगी ॥८॥ चाहे दीन हो और चाहे राज्य से हीन हो, जो मेरा पति है वही मेरा पूज्य है । जिस प्रकार सूर्य की पत्नी सूर्य में अनुरक्त है, उसी प्रकार मैं उसमें नित्य ही अनुरक्त हूँ ॥९॥ जैसे महाभागा इन्द्राणी इन्द्र के पास रहती है, (जैसे) अरुन्धती वसिष्ठ के पास, जैसे रोहिणी शशी के पास, जैसे लोपामुद्रा अगस्त्य के पास, जैसे सुकन्या च्यवन के पास, (जैसे) सावित्री सत्यवान् के पास, जैसे श्रीमती कपिल के

७. किल्बिषम् पापमयम् । ९. गुरुः उपास्यदेवता । सुवर्चला सूर्यपत्नी, सूर्याभिमुखपुष्पवती काचिद् ओषधिर् इत्यन्ये ।

तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ।
सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ॥१३॥
अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिशपाद्रुमे ।
सीतां सन्तर्जयन्तीस्ता राक्षसीरश्रृणोत् कपिः ॥१४॥
तामभिक्रम्य संरब्धा वेपमानां समन्ततः ।
भृशं संलिलिहुर्दीप्तान् प्रलम्बान् दशनच्छदान् ॥१५॥
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् ।
नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् ॥१६॥
सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वराङ्गना ।
सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥१७॥

यथा भैमी दमयन्ती नैषधं पतिम् अनुव्रता, तथा अहम् इक्ष्वाकुवरं रामं पतिम् अनुव्रता ॥ १०-१३॥ सीतायाः वचनं श्रुत्वा रावणचोदिताः क्रोधमूर्च्छिताः राक्षस्यः परुषैः वाक्यैः (तां) भर्त्स्यन्ति स्म ॥१३॥ शिंशपाद्रुमे अवलीनः निर्वाक्यः कपिः सः हनुमान् सीतां संतर्जयन्तीः ताः राक्षसीः अश्रृणोत् ॥१४॥ वेपमानां तां (सीताम्) समन्ततः अभिक्रम्य संरब्धाः (ताः राक्षस्यः) दीप्तान् प्रलम्बान् दशनच्छदान् भृशं संलिलिहुः परमक्रुद्धाः च आशु परश्वधान् प्रगृह्य ऊचुः—इयं (सीता) राक्षसाधिपं रावणं भर्तारं न अर्हति ॥१५-१६॥ भीमाभिः ताभिः राक्षसीभिः भर्त्स्यमाना सा वराङ्गना

पास, मदयन्ती सुदास् के पुत्र के पास, जैसे केशिनी सगर के पास, और जैसे भीम की पुत्री दमयन्ती (अपने) पति निषधराज नल की आज्ञाकारिणी है, उसी प्रकार मैं इक्ष्वाकुओं में श्रेष्ठ अपने पति राम की आज्ञाकारिणी हूँ ॥१०-१३॥ सीता की बात को सुनकर रावण से प्रेरित और क्रोध में भरी हुई राक्षसियां कठोर वचनों के साथ (उसकी) भर्त्सना करने लगीं ॥१३॥ शीशम के वृक्ष पर छुप कर चुप-चाप बैठे हुए उस वानर हनुमान् ने सीता को धमकाती हुई उन राक्षसियों को सुना ॥१४॥ कांपती हुई उस (सीता) को चारों ओर से घेरकर आवेश में आई हुई (वे) राक्षसियां चमकते हुए और नीचे लटकते हुए होंठों को बहुत अधिक चाटने लगीं, और बड़े भारी क्रोध में भरकर और तुरन्त कुल्हाड़े (हाथों में) लेकर बोलीं--यह (सीता) राक्षसराज रावण को पति-रूप में वरण करने के योग्य नहीं है ॥१५-१६॥ उन भयंकर राक्षसियों से धमकाई जाती हुई वह सुन्दर अंगों वाली (सीता) अपने

---

१३. रावणचोदिताः रावणप्रेरिताः । १४. अवलीनः छन्नः 'छुपा हुआ' । निर्वाक्यः मौनी। राक्षसीः अश्रृणोत् तासां वाक्यानि अश्रृणोत्। १५. अभिक्रम्य समीपम् आगत्य । संरब्धाः क्रुद्धाः । लिलिहुः √लिह् 'आस्वादने' लिट्, प्र० पु०, ब० व०, आस्वादयामासुः । दशनच्छदान् अधरान् ।

ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता ।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता ॥१८॥
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम् ।
भर्त्सयाञ्चक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः ॥१९॥
ततस्तु विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना ।
अब्रवीत् कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ॥२०॥
सीते पर्याप्तमेतावद् भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः ।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ॥२१॥
परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः ।
ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि ॥२२॥
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ।
विक्रान्तमापतन्तं च सुरेशमिव वासवम् ॥२३॥

बाष्पम् अपमार्जन्ती तां शिंशपाम् उपागमत् ॥१७॥ ततः राक्षसीभिः समावृता विशालाक्षी सीता तां शिंशपाम् अभिगम्य शोकपरिप्लुता तस्थौ ॥१८॥ ताः भीमाः राक्षस्यः कृशाम्, दीनवदनाम् मलिनाम्बरवासिनीं तां (सीताम्) समन्ततः भर्त्सयाञ्चक्रिरे ॥१९॥ ततः तु निर्णतोदरी, कराला, कुपिताकारा, भीमदर्शना विनता नाम राक्षसी अब्रवीत् ॥२०॥ सीते ! एतावत् (त्वया) भर्तुः (रामस्य) स्नेहः पर्याप्तं प्रदर्शितः । भद्रे ! अतिकृतं सर्वत्र व्यसनाय उपकल्पते ॥२१॥ मानुषः विधिः ते कृतः, परितुष्टा अस्मि, भद्रं ते (भवतु) । मैथिलि ! (अधुना) ब्रुवन्त्याः मम अपि पथ्यं वचः तु कुरु ॥२२॥ सुरेशं वासवम् इव च विक्रान्तम् आपतन्तं सर्वरक्षसां

आंसुओं को पोंछती हुई उस शीशम के वृक्ष के पास आई ॥१७॥ तब राक्षसियों से घिरी हुई विशाल नेत्रों वाली सीता उस शीशम के पेड़ के पास आकर शोक में डूबकर खड़ी हो गई ॥१८॥ वे भयङ्कर राक्षसियां कृश, दीनवदना और मलिन वस्त्रों को धारण करने वाली उस (सीता) की सब ओर से भर्त्सना करने लगीं ॥१९॥ तब पतली कमर वाली, भयङ्कर रूप वाली, कुपित आकृति वाली और भयानक शक्ल वाली विनता नाम वाली राक्षसी बोली ॥२०॥ हे सीते ! अब तक (तूने) अपने पति (राम का) स्नेह पर्याप्त मात्रा में दिखा दिया है। हे कल्याणि, अति किया हुआ (कार्य) सर्वत्र दुःख के लिये होता है ॥२१॥ तेरे द्वारा मानव अनुष्ठान कर दिया गया है, मैं तुझ से बहुत प्रसन्न हूँ, तेरा कल्याण हो। हे मैथिली, अब मुझ कहती हुई की भी हितकारी बात कर ॥२२॥ देवों के स्वामी इन्द्र जैसे विक्रमशील, (तुम्हारे) पास आने वाले, सब राक्षसों के स्वामी रावण को पति

---

२०. निर्णतोदरी अतिनिम्नोदरी 'पतली कमर वाली' । कुपिताकारा कुपितः कोपबोधकः आकारो यस्याः सा । २१. अतिकृतम् अतिमात्राचरणम् । व्यसनम् दुःखम् । २२. विधिः

दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम् ।
मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ॥२४॥
दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
अद्यप्रभृति लोकानां सर्वेषामीश्वरी भव ॥२५॥
अग्नेः स्वाहा यथा देवी शची वेन्द्रस्य शोभने ।
किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ॥२६॥
एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि ।
अस्मिन् मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् ॥२७॥
अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा ।
अब्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती ॥२८॥
बहून्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते ।
अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ॥२९॥

भर्तारं रावणं भर्तारं भज ॥२३॥ मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा दक्षिणम्, त्यागशीलम्, सर्वस्य प्रियवादिनं च रावणम् आश्रय ॥२४॥ वैदेहि ! शोभने ! अग्नेः स्वाहा यथा, इन्द्रस्य देवी शची (यथा) वा, दिव्याङ्गरागा, दिव्याभरणभूषिता (च सती त्वम्) अद्य प्रभृति सर्वेषां लोकानाम् ईश्वरी भव। वैदेहि ! गतायुषा, कृपणेन रामेण ते किं (प्रयोजनम्) ॥२५-२६॥ एतद् उक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि, अस्मिन् मुहूर्त्ते वयं सर्वाः त्वां भक्षयिष्यामहे ॥२७॥ अन्या तु लम्बमान-पयोधरा, कुपिता, मुष्टिम् उद्यम्य तर्जती विकटा नाम राक्षसी सीताम् अब्रवीत् ॥२८॥ सुदुर्मते मैथिलि ! अनुक्रोशात् मृदुत्वात् च अप्रतिरूपाणि बहूनि तव वचनानि

बना ले ॥२३॥ मनुष्य जाति में उत्पन्न कृपण राम को छोड़कर चतुर, त्यागशील और सबसे मीठा बोलने वाले रावण का आश्रय ग्रहण कर ॥२४॥ हे वैदेही! हे सुन्दरी! अग्नि की (पत्नी) स्वाहा की तरह और इन्द्र की पत्नी शची की तरह दिव्य अङ्ग-राग वाली, दिव्य गहनों से भूषित (होकर तू) आज से लेकर सब लोकों की स्वामिनी बन जा। हे वैदेही ! बीती हुई आयु वाले, कृपण राम से तेरा क्या प्रयोजन ॥२५-२६॥ और इस मेरे कहे हुए वचन का यदि तू पालन नहीं करेगी तो इसी क्षण हम सब तुझे खा लेंगी ॥२७॥ अन्य लटकते हुए स्तनों वाली, क्रोध में आई हुई, मुट्ठी उठाकर डांटती हुई विकटा नाम की राक्षसी सीता को कहने लगी ॥२८॥ हे दुष्ट बुद्धि वाली सीता ! अनुकम्पा और मृदुता के कारण तेरी

अनुष्ठानम् । ते कृतः त्वया कृतः तृतीयास्थाने षष्ठी। २३. **विक्रान्तम्** विक्रम-वन्तम् । **आपतन्तम्** आगच्छन्तम् । **रूपवन्तम्** इति गोविन्दस्य पाठः। २४. **दक्षिणं** निपुणम् । २८. **लम्बमानपयोधरा** लम्बमानौ पयोधरौ यस्याः सा । **तर्जती** तर्जन्ती । अत्र भ्वादावपि नुमागमाभाव आर्षः । २९. **अनुक्रोशः** दया । **अप्रतिरूपाणि**

न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम् ।
आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् ॥३०॥
रावणान्तःपुरे घोरे प्रविष्टा चासि मैथिलि ।
रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता ॥३१॥
न त्वां शक्तः परित्रातुमपि साक्षात् पुरन्दरः ।
कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि ॥३२॥
अलमश्रुनिपातेन त्यज शोकमनर्थकम् ।
भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैन्यताम् ॥३३॥
सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथासुखम् ।
जानीमहे यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ॥३४॥
यावन्न ते व्यतिक्रामेत् तावत् सुखमवाप्नुहि ।
उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ॥३५॥

सोढानि ॥२९॥ कालपुरस्कृतं हितं नः वाक्यं च न कुरुषे । अन्यैः दुरासदं समुद्रस्य पारम् आनीता असि । मैथिलि ! घोरे रावणान्तःपुरे प्रविष्टा असि, रावणस्य गृहे रुद्धा च त्वम् अस्माभिः अभिरक्षिता (असि) ॥३०-३१॥ साक्षात् पुरन्दरः अपि त्वां परित्रातुं न शक्तः, मैथिलि ! हितवादिन्याः मम वचनं कुरुष्व ॥३२॥ अश्रुनिपातेन अलम, अनर्थकं शोकं त्यज । नित्यदैन्यतां त्यजन्ती प्रीतिं प्रहर्षं च भज ॥३३॥ सीते ! राक्षसराजेन यथासुखं परिक्रीड । भीरु ! जानीमहे स्त्रीणां यौवनं यथा अध्रुवम् (अस्ति) ॥३४॥ यावत् ते (यौवनम्) न व्यतिक्रामेत् तावत् सुखम् अवाप्नुहि । मदिरेक्षणे ! त्वं रम्याणि उद्यानानि च, पर्वतोपवनानि च राक्षसराजेन सह

बहुत सी उलटी बातें (हमने) सहीं ॥२९॥ हमारी कालोचित हितकारी बात को तू नहीं मान रही है । अन्य लोगों की पहुँच के बाहर समुद्र के (इस) पार तू ले आई गई है । हे मैथिली ! तू रावण के इस घोर अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गई है, और रावण के घर में रुकी हुई तू हमारे द्वारा रखवाली की जा रही है ॥३०-३१॥ साक्षात् इन्द्र भी तेरी रक्षा नहीं कर सकता । हे मैथिली ! मुझ हित की बात कहने वाली के वचन को मान ले ॥३२॥ आँसू मत बहा, बेकार के शोक को छोड़ दे । नित्यदीनता को छोड़ती हुई प्रीति और प्रहर्ष का आश्रय ले ॥३३॥ हे सीते ! राक्षसराज के साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा कर । हे भीरु ! हम जानते ही हैं, स्त्रियों का यौवन जैसा अल्पकालिक होता है ॥३४॥ यौवन बीत जाने से पूर्व आनन्द ले ले । हे नशीली आंखों वाली ! तू सुन्दर बागों और पर्वतों के उपवनों में राक्षसराज

राक्षसायोग्यानि 'राक्षसों के अयोग्य' । ३०. कालपुरस्कृतम् कालोचितम् । ३३. नित्यदैन्यताम् निरन्तरदीनत्वम् स्वार्थे ष्यञ् । ३४. अध्रुवम् चलम् । ३५. व्यतिक्रामेत् यौवनम् इति शेषः । दुःखम् अवाप्नुहि अत्र सुखमिति गोविन्दराजस्य पाठ

सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे ।
स्त्रीसहस्राणि ते देवि वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि ॥३६॥

रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ।
उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ॥३७॥

यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत् करिष्यसि ।
ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना ॥३८॥

भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् ।
इमां हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कम्पपयोधराम् ॥३९॥

रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौहृदो मे महानयम् ।
यकृत् प्लीहं महत् क्रोडं हृदयं च सबन्धनम् ॥४०॥

गात्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः ।
ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥४१॥

चर। देवि ! सुन्दरि ! स्त्रीसहस्राणि ते वशे स्थास्यन्ति ॥३५-३६॥ सर्वरक्षसां भर्तारं रावणं भर्तारं भज। मैथिलि ! यदि व्याहृतं मे वाक्यं यथावत् न करिष्यसि, उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि ॥३७-३८॥ ततः क्रूरदर्शना चण्डोदरी नाम राक्षसी महत् शूलं भ्रामयन्ती इदं वचनम् अब्रवीत् ॥३८-३९॥ हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कम्पपयोधरां रावणेन हृताम् इमां (सीताम्) दृष्ट्वा महान् अयं मे दौहृदः —यकृत्, प्लीहम्, महत्क्रोडम्, सबन्धनं च हृदयम्, गात्राणि अपि, तथा शीर्षं खादेयम् इति मे मतिः ॥३८-४१॥ ततः तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यम् अब्रवीत्। इमां

के साथ विहार कर। हे देवी, हे सुन्दरी, हजारों स्त्रियां तेरे वश में रहेंगी ॥३५-३६॥ सब राक्षसों के स्वामी रावण को (अपना) पति बना ले। हे मैथिली ! यदि मेरी कही बात को यथावत् नहीं करेगी तो तेरे हृदय को फाड़ कर खा जाऊंगी ॥३७-३८॥ तब क्रूर आकृति वाली चण्डोदरी नामक राक्षसी महान् शूल घुमाती हुई यह वचन बोली ॥३८-३९॥ हिरण के बच्चे जैसी आंखों वाली, डर से कांपते हुए पयोधरों वाली, रावण द्वारा हरण की हुई इस (सीता) को देख कर मुझे यह महान् दोहद हो रहा है —जिगर, प्लीहा (तिल्ली), विशाल वक्षस्थल, बन्धन सहित हृदय, और अंगों तथा सिर को भी खा जाऊँ, ऐसा मेरा विचार है ॥३८-४१॥ उसके पश्चात् प्रघसा नाम की राक्षसी कहने लगी—(पहले) इसे काट

एव साधुः। ४०. दौहृदः इच्छा। गर्भिण्या गर्भकृत इच्छाविशेषो दौहृदम्। यकृत् दक्षिणभागस्थ कालखण्डाभिधः मांसविशेषः। प्लीहं हृदयवामभागस्थो गुल्माख्यो मांसविशेषः। यद्यपि तद्वाचकः प्लीहा इत्याकारान्तः, तथा पि अदन्तत्वम् आर्षम्।

विशस्येमां ततः सर्वान् समान् कुरुत पिण्डकान् ।
विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते ॥४२॥
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु ।
ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥४३॥
अजामुख्या यदुक्तं वै तदेव मम रोचते ।
सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी ॥४४॥
मानुषं मांसमासाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् ।
एवं निर्भर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा ।
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ॥४५॥

विशस्य ततः सर्वान् पिण्डकान् समान् कुरुत, ततः (वयं) सर्वाः विभजाम, विवादः मे न रोचते। पेयम्, विविधं बहु माल्यं च क्षिप्रम् आनीयताम् ॥४१-४३॥ ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यम् अब्रवीत्, अजामुख्या वै यद् उक्तम् तद् एव मम रोचते। सर्वशोकविनाशिनी सुरा च क्षिप्रम् आनीयताम्। अथ मानुषं मांसम् आसाद्य निकुम्भिलां (गत्वा) नृत्यामः ॥४३-४५॥ विरूपाभिः राक्षसीभिः एवं निर्भर्त्स्यमाना सुरसुतोपमा सा सीता धैर्यम् उत्सृज्य रोदिति ॥४५॥

कर फिर सारे टुकड़ों को बराबर कर लो। तब हम सब (उन्हें) बांट लें, झगड़ा मुझे अच्छा नहीं लगता। शराब और विविध प्रकार की बहुत सी मालाएं तुरन्त लाई जाएं ॥४१-४३॥ उसके पश्चात् शूर्पणखा नामक राक्षसी वचन बोली—अजामुखी ने जो कुछ कहा है, वही मुझे अच्छा लगता है। सब शोकों को नष्ट करने वाली सुरा शीघ्र लाई जाए। तत्पश्चात् मनुष्य के मांस को पाकर निकुम्भिला (के मन्दिर में) जा कर हम नाचें ॥४३-४५॥ कुरूप राक्षसियों के द्वारा इस प्रकार धमकाई जाती हुई देवकन्या जैसी वह सीता धैर्य खोकर रोने लगी ॥४५॥

महत्क्रोडम् भुजान्तरम्। ४२. **पिण्डकान्** मांसखण्डान्। **विशस्य** हत्वा। **समान्** यथाराक्षसीसमविभागान्। **विभजाम** स्वस्वभागं ग्रहीष्यामः। **मम रोचते** मह्यम् इत्यस्य स्थाने मम। चतुर्थीस्थाने षष्ठी। ४५. **निकुम्भिलाम्** निकुम्भिला नाम लङ्कायाः पश्चिमद्वारप्रदेशनिवासिनी भद्रकाली, तां गत्वा इति शेषः।

पञ्चविंशः सर्गः

अथ तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु ।
राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा ॥१॥

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी ।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा ॥२॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥३॥

सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।
न शर्म लेभे शोकार्ता रावणेनेव भर्त्सिता ॥४॥

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः ।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥५॥

अथ असौम्यानां परुषं बहु दारुणं च वदन्तीनां तासां राक्षसीनां (वचः श्रुत्वा) जनकात्मजा रुरोद ॥१॥ राक्षसीभिः एवम् उक्ता तु परमत्रस्ता मनस्विनी वैदेही बाष्पगद्गदया गिरा उवाच ॥२॥ मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुं न अर्हति । कामं सर्वाः मां खादत, न वो वचः करिष्यामि ॥३॥ राक्षसीमध्यगता, रावणेन च भर्त्सिता, सुरसुतोपमा, शोकार्ता सा सीता शर्म न लेभे ॥४॥ वने यूथपरिभ्रष्टा कोकैः अर्दिता मृगी इव आत्मनः अङ्गं विशन्ती इव सीता अधिकं वेपते स्म ॥५॥ शोकेन भग्नमानसा

तत्पश्चात् उन असौम्य, कठोर और अत्यन्त दारुण भाषण करने वाली राक्षसियों के वचन को सुनकर जनक की पुत्री रोने लगी ॥१॥ राक्षसियों के द्वारा इस प्रकार कहने पर बहुत अधिक डरी हुई (परन्तु) अपने पतिव्रत-धर्म पर अटल सीता आंसुओं से रुंधी हुई वाणी से बोली ॥२॥ मानव-स्त्री राक्षस की पत्नी नहीं बन सकती। भले ही तुम सब मुझे खा लो, मैं तुम्हारा कहना नहीं मानूंगी ॥३॥ राक्षसियों के मध्य में स्थित, रावण के द्वारा धमकाई हुई, सुरकन्या जैसी, शोकार्ता वह सीता सुख का अनुभव नहीं कर रही थी ॥४॥ वन में (अपने) झुंड से बिछुड़ी हुई (और) भेड़ियों से पीड़ित मृगी की तरह अपने शरीर में ही घुसी जाती हुई सी

---

१. **वदन्तीनां** वचः श्रुत्वा इति शेषः इति तिलकटीकाकारः, वदन्तीनां मध्ये इति शिरोमणिटीकाकारः, वदन्तीषु इति भूषणटीकाकारो गोविन्दः। २. **मनस्विनी** पातिव्रत्ये दृढमनाः। ४ **शर्म** सुखम्। ५. **आत्मनोऽङ्गम्** **विशन्तीव**

सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् ।
चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥६॥
सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः ।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥७॥
सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा ।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विवर्णवदनाभवत् ॥८॥
तस्याः सा दीर्घबहुला वेपन्त्याः सीतया तदा ।
ददृशे कम्पिता वेणी व्यालीव परिसर्पती ॥९॥
सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना ।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च ॥१०॥

सा तु पुष्पितां विपुलाम् अशोकस्य शाखाम् आलम्ब्य भर्तारं चिन्तयामास ॥६॥ नेत्रजलस्रवैः विपुलौ स्तनौ स्नापयन्ती (भर्तारं) चिन्तयन्ती च तदा शोकस्य अन्तं न अधिगच्छति ॥७॥ प्रवाते पतिता कदली यथा राक्षसीनां भयत्रस्ता वेपमाना (च) सा (सीता) विवर्णवदना अभवत् ॥८॥ तदा वेपन्त्याः सीतया (=सीतायाः) परिसर्पती, व्यालीव दीर्घबहुला, कम्पिता सा वेणी ददृशे ॥९॥ निःश्वसन्ती, शोकार्ता, कोपोपहतचेतना आर्ता दुःखार्ता भामिनी सा मैथिली हा रामेति च पुनः हा लक्ष्मणेति च

सीता बहुत अधिक कांप रही थी ॥५॥ शोक से टूटे हुए मन वाली वह (सीता) अशोक की फूली हुई महान् शाखा को पकड़कर पति का चिन्तन करने लगी ॥६॥ वह आँखों की जल-धाराओं से स्थूल स्तनों को भिगोती हुई और (पति का) चिन्तन करती हुई उस समय शोक का पार नहीं पा रही थी ॥७॥ आंधी में गिरे हुए केले के वृक्ष की तरह राक्षसियों के भय से त्रस्त और कांपती हुई वह सीता फीके मुख वाली हो गई ॥८॥ तब कांपती हुई सीता की चलती हुई सर्पिणी जैसी, बहुत लम्बी और कम्पमान वह वेणी दिखाई दी ॥९॥ लम्बे-लम्बे सांस लेती हुई, शोकार्त, कोप से उपहत चित्त वाली, पीड़ित, दुःखसंतप्त नारी वह सीता हाय राम! हाय लक्ष्मण! हाय मेरी

भीत्या अतिसंकुचितशरीरा कमठवद् अभूद् इत्यर्थः । कोकैः वृकैः । ६. **अशोकस्य शाखाम्**—अशोक वन के अन्दर स्थित शिंशपा वृक्ष की शाखा को अथवा वहाँ स्थित किसी अशोक वृक्ष की शाखा को । ७. **अधिगच्छति** अध्यगच्छत् । ८. **राक्षसीनाम्** राक्षसीभ्यः, पञ्चम्याः स्थाने षष्ठी । ९. **सीतया** सीतायाः, षष्ठ्याः स्थाने तृतीया । **दीर्घबहुला** अतिदीर्घा । **परिसर्पती** परिसर्पन्ती, नुमागमाभाव आर्षः । शत्रन्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाते समय अन्तिम त् से पूर्व नुमागम का नियम यह है कि भ्वा०, दिवा० और चुरादिगण तथा णिजन्त, सन्नन्त और नामधातुओं में नुमागम अनिवार्य होता है; तुदादिगण, अदादिगण की केवल आकारान्त धातुओं और स्यत् तथा ष्यत् अन्त वाले धातुओं में विकल्प से होता है । अन्यत्र नुमागम नहीं होता । **व्याली** सर्पिणी । १०. **आर्ता** रामविरहार्ता ।

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च ।
हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥११॥
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥१२॥
यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता ।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥१३॥
एषाल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहृता ॥१४॥
भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता ।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥१५॥
तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥१६॥

हा मम श्वश्रूः कौसल्ये (च) हा सुमित्रेति च विललाप अश्रूणि च व्यसृजत् ॥१०-११॥ यत्र इह क्रूराभिः आभिः राक्षसीभिः अर्दिता, रामेण हीना, (अतः एव) दुःखिता अहम् मुहूर्तम् अपि जीवामि, पण्डितैः सत्यः अयं लोकप्रवादः समुदाहृतः—अकाले स्त्रियाः वा पुरुषस्य वा मृत्युः दुर्लभः (इति) ॥१२-१३॥ समुद्रमध्ये वायुवेगैः आहता पूर्णा नौः इव अल्पपुण्या, कृपणा एषा (अहं) अनाथवत् विनशिष्यामि ॥१४॥ तं भर्तारम् अपश्यन्ती, राक्षसीवशम् आगता तोयहतं कूल यथा शोकेन खलु सीदामि ॥१५॥ (ते) धन्याः (ये) पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनं, कृतज्ञं, प्रियवादिनं, तं मे नाथं

सास कौसल्या और हास सुमित्रा (ऐसा कहकर) विलाप करने लगी और आंसू बहाने लगी ॥१०-११॥ यहाँ जो मैं इन क्रूर राक्षसियों से पीड़ित, राम से वियुक्त (अतः) दुःखी क्षण भर भी जी रही हूँ, तो पण्डितों द्वारा कही हुई यह किंवदन्ती सच ही है कि विना काल आए स्त्री अथवा पुरुष की मृत्यु दुर्लभ है ॥१२-१३॥ समुद्र के बीच में वायु के वेगों से आहत, भरी हुई नाव की तरह, स्वल्प पुण्यों वाली, कृपण यह (मैं) अनाथ की तरह नष्ट हो जाऊँगी ॥१४॥ उस पति को न देख पाती हुई; राक्षसियों के वश में पड़ी हुई जल से कटे तट की तरह मैं शोक से नष्ट हो रही हूँ ॥१५॥ वे धन्य हैं जो कमल-दल के समान आँखों वाले, सिंह की गति से चलने

---

११. **सुमित्रेति** यहाँ सुमित्रे के ए को अय् आदेश होकर और य् का लोप होकर पुनः सन्धि नहीं होनी चाहिए थी, पुनः गुणसन्धि आर्ष है । १४. **विनशिष्यामि** विनङ्क्ष्यामि । १६. **पद्मदलपत्राक्षम्** पद्मदलं विकसितंपद्मं तस्य पत्रम् इव अक्षिणी यस्य तम् । **सिंहविक्रान्तगामिनम्** विक्रम. ग.न तद्वद् गच्छति तच्छीलम् । वस्तुतः दल और पत्र पर्यायवाची शब्द हैं । ऐसे दोहरे प्रयोग (अनुवादयुग्म) अनेकशः को मिलते हैं, यथा—मरुधन्वन्, जातिजन्मन्, शिखाग्र, शब्दरवः, दावाग्नि

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ।।१७।।
कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम् ।
येनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम् ।।१८।।
जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता ।
राक्षसीभिश्च रक्ष्यन्त्या रामो नासाद्यते मया ।।१९।।
धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् ।
न शक्यं यत् परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ।।२०।।

पश्यन्ति ।।१६।। तीक्ष्णं विषम् आस्वाद्य इव विदितात्मना तेन रामेण हीनायाः मम जीवनं सर्वथा दुर्लभम् ।।१७।। देहान्तरे मया तु कीदृशं महापापं कृतं, येन घोरं सुदारुणम् इदं महादुःखं प्राप्यते ।।१८।। महता शोकेन वृता, जीवितं त्यक्तुम् इच्छामि (तदपि न शक्यम्) । राक्षसीभिः च रक्षन्त्या मया रामः (अपि) न आसाद्यते ।।१९।। मानुष्यं खलु धिग् अस्तु, परवश्यतां च धिग् अस्तु, यत् आत्मच्छन्देन जीवितम् (अपि) परित्यक्तुं न शक्यम् ।।२०।।

वाले, कृतज्ञ, मधुरभाषी उस मेरे स्वामी के दर्शन करते हैं ।।१६।। मानो तीक्ष्ण विष को खाकर, विदितात्मा उस राम से बिछुड़कर, अब मेरे लिये जीवित रहना कठिन है ।।१७।। पूर्व जन्म में मैंने कैसा महापाप किया था जिसके कारण यह घोर और अत्यन्त दारुण दुःख प्राप्त हो रहा है ।।१८।। महान् शोक से घिरी हुई मैं जीवन को त्यागना चाहती हूँ (पर वह भी नहीं हो सकता), और मुझ राक्षसियों के द्वारा रखवाली की जाती हुई के द्वारा राम को भी नहीं पाया जा सकता ।।१९।। मनुष्यता को धिक्कार है, परवशता को धिक्कार है, जो अपनी मरज़ी से जीवन का परित्याग भी नहीं किया जा सकता ।।२०।।

आदि । १७. आस्वाद्य भक्षयित्वा । देहान्तरे अन्यो देहः देहान्तरः तस्मिन्, पूर्वजन्मनि । १९. रक्षन्त्या रक्ष्यमाणया 'रखवाली की जाती हुई के द्वारा' ।

1. THĀIDEŚAVILĀSAM—Satyavrat Shastri 40.00
2. YOGA-KARṆIKĀ OF NATH AGHORANAND
With Eng. Intro. & Index— N.N. Sharma 50.00
3. ĀŚVALĀYANA GṚHYASŪTRAM
Text, Sanskrit Commentary of Nārāyaṇa, English Translation, Introduction and Index—N.N. Sharma 50.00
4. THE LIFE OF BUDDHA—H.C. Warren (Foreword by Charles R. Lanman) 45.00
5. KALPACINTĀMAṆI OF DĀMODARA BHAṬṬA
Text, English Translation—N.N. Sharma. 60.00
6. PĀTAÑJALA YOGA SŪTRA : A CRITICAL STUDY
In the light of Tattva-Vaiśāradı & Yoga-Vārttika (In Hindi) —Pavan Kumari 60.00
7. ANCIENT KAMBOJA : PEOPLE AND COUNTRY
(प्राचीन कम्बोज : जन और जनपद)—जियालाल काम्बोज 75.00
8. ANCIENT INDIAN CULTURE & LITERATURE
(Pt. Ganga Ram Commemoration Volume, Golden Jubilee celebration Lectures, Sanskrit Deptt. Ramjas College, Delhi —Ed. Mohan Chand 75.00
9. ŚVETĀŚVATAROPANIṢAD—T.R. Sharma 20.00
10. KENOPANIṢAD EVAM VAIDIC UDDHARAṆA —Suman Sharma 6.00
11. ĪŚĀVĀSYOPANIṢAD—Madhubala Sharma 2.00
12. VAIDIKA SAṀGRAHA—Krishan Lal 10.00
13. RAGHUVAṀŚAM (Second Canto)—Pavan Kumari 6.00
14. ŚAKTI AND HER EPISODES—
Pushpendra Kumar Sharma 40.00
15. SANSKRIT-VĀṄMAYA MEṀ NEHRU—Madhubala 20.00
16. PRABODHA CHANDRIKĀ —Vaijala Ed. J.L. Shastri 10.00
17. PRIME MINISTERS IN ANCIENT INDIA : J.L.Shastri 15.00
18. BHAIRAVA VILĀSA—Brahmatra Vaidyanāttha 10.00
19. KṚṢṆĀBHYUDAYAM—Lokanātha Bhaṭṭa 10.00
20. RELIGIOUS SECTS IN ANCIENT INDIA—PAI 100.00
21. VEDA MĪMĀṀSĀ—L.D. Dixit 40.00
22. ABHIDHĀ VIMARŚA—Y.D. Sharma 40.00
23. BHĀGAVATA MEṀ PREMA TATTVA-R.C.Tiwari (In Press)
24. श्यैनिकशास्त्रम् (THE ART OF HUNTING
INDIA)—Mohan Chand
25. योगसारसंग्रह—विज्ञानभिक्षु (मूल, हिन्दी व्याख्या
—पवन कुमारी